दुलारे-दोहावली

संपादक
सर्वप्रथम देव-पुरस्कार-विजेता
श्रीदुलारेलाल
(सुधा-संपादक)

गंगा-पुस्तकमाला का १२१वाँ पुष्प

दुलारे-दोहावली

[सर्वप्रथम देव-पुरस्कार-प्राप्त]

प्रणेता
श्रीदुलारेलाल

सखि, जीवन सतरंज-सम,
सावधान ह्वै खेलि,
बस जय लहिबौ ध्यान धरि,
त्यागि सकल रँग-रेलि।

मिलने का पता —
गंगा-ग्रंथागार
३६, लाटूश रोड
लखनऊ

अष्टम संस्करण

सजिल्द १।।)] संवत् २००१ वि० [सादी १)

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

अन्य प्राप्ति-स्थान—

१. दिल्ली—दिल्ली-गंगा-ग्रंथागार, चर्खेवालाँ
२. प्रयाग—प्रयाग-गंगा-ग्रंथागार, गोविंद-भवन
३. काशी—काशी-गंगा-ग्रंथागार, मच्छोदरी-पार्क
४. पटना—पटना-गंगा-ग्रंथागार, मछुआ-टोली

नोट—हमारी सब पुस्तकें इनके अलावा हिंदुस्थान-भर के सब बुकसेलरों के यहाँ मिलती हैं। जिन बुकसेलरों के यहाँ न मिलें, उनका नाम-पता हमें लिखें। हम उनके यहाँ भी मिलने का प्रबंध करेंगे। हिंदी-सेवा में हमारा हाथ बँटाइए।

मुद्रक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

-प्रेमोपहार-



श्रीमती सावित्री

अपनी सबसे प्रिय वस्तु
सबसे प्रिय दिवस
की
सबसे प्रिय घड़ी पर
सबसे प्रिय
कुसुम-करों
में

वसंत-पंचमी
(मध्याह्न)
१९९६

दुलारेलाल



हिज हाईनेस श्रीमान सवाई महेंद्र महाराजा वीरसिंहजूदेव (ओरछा-नरेश)

प्रमाण-पत्र

मैंने दो हज़ार मुद्रा २०००) वार्षिक का जो **'देव-पुरस्कार'** स्थापित किया है, उसके नियमानुसार इस वर्ष ब्रजभाषा-काव्य के सर्वश्रेष्ठ नवीन ग्रंथ पर उक्त पुरस्कार मिलना था। मुझे इस प्रमाण-पत्र द्वारा यह घोषित करने में परम प्रसन्नता है कि इस वर्ष का पुरस्कार निर्णायकों द्वारा लखनऊ-निवासी श्रीयुत पंडित दुलारेलालजी को, उनके 'दुलारे-दोहावली'-नामक उत्तम ग्रंथ के कारण, समर्पित किया गया है।

मैं आशा करता हूँ, उनके द्वारा हिंदी की और भी सराहनीय सेवाएँ हो सकेंगी। मैं उन्हें अपनी, ओरछा-राज्य एवं हिंदी-संसार की ओर से हार्दिक बधाई देता हूँ!

वीरसिंहदेव

टीकमगढ़, मध्य-भारत
वीर-वसंतोत्सव (संवत् १९९१)
६। २। १९३५

हिज़ हाइनेस
श्रीसवाई महेंद्र महाराजा ओरछा
सरामद-राज-हाय-बुंदेलखंड

विज्ञप्ति

[अष्टम संस्करण पर]

सर्व-साधारण को सुलभ करने के लिये ही यह छोटा-सा, पर सुंदर संस्करण, सस्ते मूल्य में, निकाला गया है। अनेक शिक्षा-संस्थाएँ दुलारे-दोहावली को अपने यहाँ कोर्स में रखना चाहती हैं, पर बृहदाकार सचित्र संस्करण का मूल्य विद्यार्थियों के लिये अधिक—२॥)—होने की उन्होंने शिकायत की। आशा है, अब इस संस्करण को अपने पाठ्य-क्रम में रखने में उन्हें दिक़्क़त न होगी। दुलारे-दोहावली का एक और संस्करण मोटे काग़ज़ पर, रंगीन चित्रों से युक्त, छपेगा, और मूल्य भी ४) होगा। आशा है, अपने सुबीते और शक्ति के अनुसार प्रत्येक हिंदी-प्रेमी दुलारे-दोहावली का यह या वह संस्करण मँगा लेंगे।

स्वनामधन्य, पूज्यपाद डॉक्टर गंगानाथ झा ने कवि की 'परिणता प्रज्ञा' के उद्‌गारों के संबंध में अपने वक्तव्य में अन्यत्र ध्यान दिलाया है। इसके संबंध में निवेदन है कि इधर ९ वर्ष के अच्छे-अच्छे ९० दोहे छाँटकर दोहावली में सम्मिलित कर दिए गए हैं, और उतने ही निकाल भी दिए गए हैं। कुछ अन्य दोहों का भी संस्कार किया गया है। आकार-वृद्धि की ओर ध्यान न देकर दोहावली को श्रेष्ठतम बनाने का प्रयत्न किया गया है।

इस ग्रंथ को पहलेपहल कर्वे-युनिवर्सिटी, पूना ने बी० ए० की छात्राओं के लिये अपने पाठ्य-क्रम में रक्खा है। फिर इसके कुछ अंश को प्रयाग-विश्वविद्यालय ने बी० ए० में पढ़ाना प्रारंभ किया।

अब सुना है, इस पूरे काव्य को लखनऊ-विश्वविद्यालय ने एम्० ए० के पाठ्य-क्रम में सम्मिलित करने की उदारता दिखलाई है। इसके लिये हम इन शिक्षा-संस्थाओं के कृतज्ञ हैं। आशा है, और भी विश्वविद्यालय तथा अन्यान्य शिक्षा-संस्थाएँ इस पुस्तक को अपनाकर अपने ब्रजभाषा-प्रेम का परिचय देंगी।

इधर कई वर्ष से इस पुस्तक की माँग होते हुए भी काग़ज़ के अभाव में हम इसे निकाल न सके, इसके लिये ब्रजभाषा-प्रेमी पाठकों से क्षमा-प्रार्थी हैं।

मालाकाफ़-इस्टेट, मंसूरी
१० । ६ । ४४

सावित्री दुलारेलाल
(संचालिका गंगा-पुस्तकमाला)

वक्तव्य

[सप्तम संस्करण पर]

'दुलारे-दोहावली' का प्रथम संस्करण जब निकला था, तभी मैंने—कुछ डरते हुए—लिखा था कि यह 'सर्वोत्तम कोटि' की कविता है। 'डरते हुए' इसलिये कि 'पंडित' प्रायः हिंदी से अनभिज्ञ समझे जाते हैं। ऐसी दशा में हिंदी-संसार के दिग्गजों द्वारा गर्हित भाषा में लिखे हुए काव्य को सराहनीय ही नहीं, पर 'सर्वोत्तम' कह देना एक निरे पंडित के लिये परम दुस्साहस कहा जा सकता है।

पर आज यह जानकर हर्ष है कि हिंदी पढ़नेवालों ने इस 'दोहावली' को इतना अपनाया है कि इसका सातवाँ संस्करण निकल रहा है। इसी प्रसंग में फिर से इन दोहों पर दृष्टि-पात करने का अवसर मिला है। आज भी इनको पढ़ने से जो आनंद—ब्रह्मास्वाद-सहोदर—अनुभूत हो रहा है, सो पहले से भी अधिक है। यही प्रमाण इसके 'उत्तम काव्य' होने का है—

"क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति
तदेव रूपं रमणीयतायाः।"

और काव्य का लक्षण भी पंडितराजोक्त ही मनोरम है—"रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्"—"रमणीयता च

लोकोत्तरचमत्कारकारिता"। "लाभाल्लोभोऽभिजायते"—इन दोहों के तो ७ संस्करण हो गए। अब कवि और अधिक 'परिणत-प्रज्ञ' हो गए हैं। इस 'परिणता प्रज्ञा' के भी उद्गार अवश्य होते होंगे। आशा है, ये भी प्रकाशित होकर दृष्टि-गोचर होंगे।

जॉर्ज-टाउन, प्रयाग
१।२।४० } गंगानाथ झा

विज्ञप्ति

[प्रथम संस्करण पर]

हिंदी-संसार में महाकवि बिहारीलाल की कितनी ख्याति है, यह किसी हिंदी-भाषा के जानकार से छिपा नहीं। कितने ही विद्वान् समालोचकों का मत है कि वह हिंदी के सर्वश्रेष्ठ कलाकार हैं। उनके बाद आज तक किसी ने भी वैसा चमत्कार नहीं पैदा किया था, परंतु यह कलंक अब दूर होने को है। अभी कुछ ही विद्वान् ऐसी सम्मति रखते हैं कि सुधा-संपादक कविवर श्रीदुलारेलालजी के दोहे महाकवि बिहारीलाल के दोहों की टक्कर के होते हैं, और बाज़-बाज़ ख़ूबसूरती में बढ़ भी गए हैं; परंतु यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि अचिर भविष्य में, जब कविवर श्री-दुलारेलालजी भार्गव के भी कई सौ ऐसे ही दोहे प्रकाशित हो जायँगे, लोगों को उनकी श्रेष्ठता का लोहा मानना होगा। कहा जाता है, ब्रजभाषा में अब पहले की-सी कविता नहीं लिखी जाती, परंतु 'दुलारे-दोहावली' ने इस कथन को बिलकुल भ्रम साबित कर दिया है। हिंदी के वर्तमान कवियों और समालोचकों में जो अग्रगण्य माने जाते हैं, उनमें से कोई-कोई मुक्त कंठ से स्वीकार करते हैं कि कविवर श्रीदुलारेलाल

वर्तमान समय में ब्रजभाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं, और उनकी दोहावली ब्रजभाषा-साहित्य की वर्तमान सर्वोत्तम कृति। इसकी ब्रजभाषा की कोमल-कांत पदावली, शृंगार और करुण-रस के कोमलतम मनोभावों की मंजुल, सजीव कल्पना-मूर्तियाँ, वीर-रस की ओजस्विनी सूक्तियाँ, देश-प्रेम का छलकता हुआ प्याला, शांत-रस की सुधा-धारा, रसानुकूल अलंकृत भाषा का मुहावरेदार प्रयोग और संक्षेप में कहने का अद्भुत कौशल आदि एक ही जगह देखकर जी प्रसन्न हो जाता है। निस्संदेह कविवर श्रीदुलारेलालजी ऐसी रचनाओं के लिये हम साहित्यिकों के धन्यवाद के पात्र हैं।

चैत्र-कृष्ण १,
१९९१

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

भूमिका

ब्रजभाषा में नवीन प्रगति

हर्ष का विषय है, भारतेंदु के बाद ब्रजभाषा पर जो आपत्ति के बादल छा गए थे, वे अब धीरे-धीरे हट रहे हैं। भारतेंदु के बाद हम ब्रजभाषा-साहित्य की रचना का ह्रास देखते हैं। यद्यपि इसमें पं० बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', राय देवीप्रसादजी 'पूर्ण', श्रीबालमुकुंद गुप्त, पं० श्रीधर पाठक, श्रीसत्यनारायण 'कविरत्न', पं० नाथूरामशंकर शर्मा 'शंकर', श्रीजगन्नाथदास 'रत्नाकर', श्रीसनेहीजी, पं० रामचंद्र शुक्ल, श्रीवियोगी हरि, श्रीअजमेरीजी, पं० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय, पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, प्रो० रामदासजी गौड़ आदि की उत्कृष्ट रचनाएँ हुई अवश्य, पर पत्रकारों एवं खड़ी बोली के प्रचारकों ने संघटित आंदोलन करके ब्रजभाषा का विरोध किया, जिससे ब्रजभाषा दब-सी गई थी। पर हिंदी-साहित्य में श्रीदुलारेलालजी के सराहनीय प्रयत्न से, 'माधुरी' और 'सुधा' के निकलते ही, ब्रजभाषा की लता पुन: लह-लहाने लगी। यद्यपि यह सत्य है कि अनेक विद्वान् ब्रजभाषा-सेवियों ने इधर भी ब्रजभाषा की श्री-वृद्धि करने में विशेष योग दिया है, पर श्री-दुलारेलालजी का प्रयत्न अनेक कारणों से इन सबकी अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्व-पूर्ण रहा है। कारण, आप ब्रजभाषा-साहित्य के प्रसिद्ध प्रचारक तथा प्रकाशक ही नहीं, श्रेष्ठ कलाकार भी हैं। साथ ही आप खड़ी बोली के भी वैसे ही प्रबलतम समर्थक हैं। अतएव आप हिंदी-माता के ऐसे सपूत हैं, जो प्राचीन और नवीन, दोनो धाराओं के पूरे हिमायती और प्रचारक हैं। आप हिंदी के उन महानुभावों में से हैं, जो रात-दिन लगन के साथ राष्ट्र-भाषा हिंदी के उत्थान में सतत प्रयत्नशील रहते हैं।

कविवर श्रीदुलारेलाल

श्रीदुलारेलालजी का जन्म लखनऊ के सुप्रसिद्ध, सुप्रतिष्ठित, धनी नवलकिशोर-कुल के यशस्वी श्रीमान् प्यारेलालजी के यहाँ हुआ था। आप उनके ज्येष्ठ पुत्र हैं। आपका लालन-पालन उर्दू के अजेय दुर्ग लखनऊ में हुआ। जिस नवलकिशोर-प्रेस ने उर्दू-फ़ारसी की ४००० पुस्तकें प्रकाशित की हैं, वहीं आपका बचपन बीता है। पर आपसे तो हिंदी की अक्षय सेवा का कार्य होना था। यद्यपि आपका परिवार उर्दू की ओर प्रभावित था, पर आपने लड़कपन में ही अपना एक निश्चित मार्ग ग्रहण कर लिया था। आपकी माता श्रीरामप्यारी देवी तुलसी-कृत रामायण और पुराणों का नियमित पाठ किया करती थीं, इसलिये उनके हिंदी-प्रेम से प्रभावित होकर इनको हिंदी के प्रति बाल्यकाल से ही अनुराग हो गया था, और आप उनकी अनुपस्थिति में उनके ग्रंथ चुपचाप पढ़ा करते थे। यह हिंदी-प्रेम अवस्थानुसार धीरे-धीरे बढ़ता गया। आप स्कूल और कॉलेज में अध्यापकों द्वारा उच्च कोटि के प्रतिभाशाली विद्यार्थी समझे जाते थे। दर्जे में प्रथम आने के कारण आपको अनेक छात्रवृत्तियाँ (वज़ीफ़े) और स्वर्ण-पदक मिले। इंट्रेंस में आप अवध-भर में प्रथम आए, और आपको कई छात्रवृत्तियाँ और स्वर्ण-पदक मिले। अँगरेज़ी में प्रांत-भर में प्रथम आने के कारण आपको नेस्फ़ील्ड*-स्कॉलरशिप भी मिला। आपकी अँगरेज़ी इतनी अच्छी थी कि आपके शुभचिंतकों की इच्छा थी कि आप आई०सी०एस्० पास करके गवर्नमेंट के ऊँचे-से-ऊँचे पद ग्रहण करें।

जब आप ९वीं कक्षा में पढ़ते थे, तब आपका विवाह अजमेर के प्रसिद्ध रईस श्रीमान् फूलचंदजी जज की सुपुत्री श्रीगंगादेवी से हुआ। हमारे होनहार महाकवि को श्रीगंगादेवी के रूप में बाह्य और

---

* युक्त-प्रांत में कभी यह शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर थे। इनकी लिखी अँगरेज़ी-व्याकरण प्रसिद्ध है।

आभ्यंतर सौंदर्य-निधि की प्राप्ति हुई थी। कहते हैं, इस स्वर्गीया देवी को जैसा अपार सौंदर्य मिला था, वैसा ही हृदय-सौंदर्य भी। ऐसा मणि-कांचन-संयोग बिरले ही पुण्यवान्, भाग्यशाली मनुष्य को प्राप्त होता है। इन देवी में अनेक गुणों के साथ-साथ हिंदी के अनन्य प्रेम का सबसे बड़ा गुण था। यह सत्संग पाकर दुलारेलालजी की हिंदी-हित की कामना-बेलि दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ने लगी, और आपने अपने सोलहवें वर्ष में भार्गव-पत्रिका का संपादन-भार अपने कोमल कंधों पर ले लिया। उसके पूर्व भार्गव-पत्रिका उर्दू में निकलती थी, पर आपके हाथ में आते ही राष्ट्र-भाषा हिंदी में निकलने लगी। उसमें हिंदी के अच्छे-अच्छे कवि और लेखक भी लिखते थे।

दुर्दैव-वश कुछ ही काल पति के साथ रहकर सौभाग्यवती श्री-गंगादेवी, १६ सितंबर सन् १६१६ को, परलोक सिधारीं। इस आघात से दुलारेलालजी की जीवन-धारा में एक महत् परिवर्तन हो गया। नवलकिशोर-प्रेस के तत्कालीन अध्यक्ष रायबहादुर श्रीमान् प्रयागनारायणजी भार्गव, जो आपके बाबा* होते थे, और भार्गव-परिवार में सबसे बड़े थे, आपसे बड़ा स्नेह रखते थे। वह अपने परिवार का इन्हें उज्ज्वलतम रत्न समझते थे। उनकी भी इच्छा थी कि आप आई० सी० एस्० पास करने के लिये विलायत जायँ, किंतु आपने सरकारी नौकरी करना बिलकुल पसंद नहीं किया, और अपनी प्राणेश्वरी पत्नी की इच्छा की पूर्ति के लिये हिंदी की महान् सेवा करने का बीड़ा उठाया। श्रीमती गंगादेवी अपना पांचभौतिक तन त्यागकर, पति की आत्मा में लीन होकर हिंदी का इतना भारी उप-

* आपके परबाबा श्रीमान् फूलचंदजी के श्रीमान् नवलकिशोरजी सी० आई० ई० छोटे भाई थे। सो नवलकिशोरजी के दत्तक पुत्र श्रीमान् प्रयागनारायणजी आपके बाबा होते थे।

कार करेंगी, यह कौन जानता था ? प्रेमी हृदय पर इस घटना का वह प्रभाव पड़ा कि दुलारेलालजी उसी समय से अविवाहित रहकर हिंदी-सेवा में निरत रहे*। पत्नी के प्रति पति का ऐसा प्रगाढ़ प्रेम बीसवीं सदी में बहुत कम देखने में आता है। अगर वह आई० सी० एस्० होकर विलायत से लौटते, तो किसी ज़िले में पड़े दिन काटते, और हिंदी उनकी इस अमूल्य सेवा से वंचित ही रह जाती ! अस्तु।

आपने अपनी सती-साध्वी धर्मपत्नी स्वर्गीया गंगादेवी के मरणोपरांत उनकी पुण्य स्मृति में, वसंत-पंचमी के दिन, 'गंगा-पुस्तकमाला' प्रारंभ की। इस माला का पहला पुष्प था माला के संपादक, संचालक और स्वामी श्रीदुलारेलालजी-रचित 'हृदय-तरंग'-नामक ग्रंथ। इसे आपने अपनी स्वर्गीया प्रिय पत्नी के नाम से सरस्वती देवी को समर्पित किया। इसके बाद तो फिर 'गंगा-पुस्तकमाला' में राष्ट्र-भाषा हिंदी का गौरव बढ़ानेवाली प्रत्येक विषय की श्रेष्ठ पुस्तकें निकलीं, जिनसे हिंदी-साहित्य की विशेष श्री-वृद्धि हुई है। इन सब पुस्तकों को आपने स्वयं ही घोर परिश्रम से संपादित करके सुंदरता से प्रकाशित किया है। इसी के साथ-साथ हिंदी के इस यशस्वी सपूत ने अपने प्रिय बालसखा और चचा श्रीविष्णुनारायणजी भार्गव के सहयोग से 'माधुरी' को सन् १९२२ में जन्म देकर और सुचारु रूप से संपादन करके हिंदी की गति-विधि ही बदल दी। उसी समय से हिंदी के मासिक साहित्य में अभूतपूर्व सुधार हुआ।

* अब ४ वर्ष हुए, आपने युक्त-प्रांत के अवकाश-प्राप्त असिस्टेंट एक्साइज़ कमिश्नर श्रीयुत एम्० बा० सिंह की सुयोग्य ज्येष्ठा कन्या श्रीमती सावित्री दुलारेलाल एम्० ए० से, उन्हें अपने अनुरूप पाकर, विवाह किया है। वह भी उच्च कोटि की वक्ता, कवयित्री, लेखिका और साहित्य-मर्मज्ञा हैं, और अपने पति के प्रत्येक साहित्यिक और सामाजिक कार्य में पूर्ण मनोयोग से योग देती हैं। हिंदी-संसार में यह जोड़ी आदर्श है।

इसका भारी श्रेय श्रीदुलारेलालजी को है। 'माधुरी' को योग्य हाथों में सौंपने के बाद हिंदी के इस लाड़ले लाल ने 'सुधा'-पत्रिका को सन् १९२७ में जन्म दिया। 'सुधा' का संपादन भी आपने अपने ही हाथों में रक्खा, और आज तक वह आप ही के हाथों में है। 'सुधा' हिंदी-संसार की प्रथम श्रेणी की पत्रिकाओं में अग्रगण्य रही है, और है। इसका संपादन उच्च कोटि का होता है। इन दोनो सर्वश्रेष्ठ पत्रिकाओं के संपादन में आप जहाँ प्राचीन, प्रतिष्ठित साहित्य-सेवियों का सम्मान करते आए हैं, वहाँ नवीन, योग्य साहित्य-सेवियों को प्रबल प्रोत्साहन भी देते आए हैं। अनेक युवक-युवतियों को बढ़ावा दे-देकर आपने उनसे लेख और ग्रंथ लिखवाए हैं। इस प्रकार आपने जहाँ स्वयं हिंदी की सेवा की है, वहाँ दूसरों से भी हिंदी-सेवा का कार्य लिया है, सैकड़ों लेखक-लेखिकाओं को साहित्य-साधना का सुंदर मार्ग दिखाया है। इनके समान हिंदी-हितैषिता बिरले लोगों में ही मिलेगी, फिर इतनी सेवा तो दुर्लभ है।

यद्यपि आपने खड़ी बोली में भी सुंदर, रसीली, भाव-पूर्ण कविता की है, पर आपकी कविता प्रधानतया ब्रजभाषा में मुक्तकों के रूप में ही देखी गई है। अब आपकी कविता के विषय में कुछ लिखने के पूर्व मैं आपके संपादन तथा प्रकाशन-कार्य की प्रशंसा के विषय में कुछ अग्रगण्य विद्वानों की सम्मतियाँ उपस्थित करता हूँ—

सुप्रसिद्ध हिंदी-हितैषी डॉक्टर सर जॉर्ज ग्रियर्सन—

"A new series of editions of Hindi classical works have latelybeen projected under the title of the Sukavi Madhuri Mala. The general editor of the series is Shri Dulareylal Bhargava well-known in Northern India as the Editor-in-Chief of the excellent Hindi Magazine, the

Śudha. In this series he proposes to offer to the public critically prepared editions of the master pieces of Hindi Literature with careful and full commentaries.

The publisher and the general editor may be congratulated on beginning this series so auspiciously and it is to be hoped that the other works to be included in it will reach the same standard of scholarship."

संस्कृत के प्रकांड विद्वान् प्रोफ़ेसर रामप्रतापजी शास्त्री (नागपुर-विश्वविद्यालय के संस्कृत-हिंदी-प्राकृत-पाली-विभाग के अध्यक्ष),—

"The Ganga Pustak Mala Karyalaya is one of the best Publishing Institutions in India. It has played an important part in the evolution of modern Hindi Literature.

It has recently made tremendous progress under the efficient management of its young and energetic proprietor Mr. Dulareylal Bhargava, an accomplished Poet, Prose-writer and the Editor of the best Hindi Monthly '*Sudha*.'

Mr. Dulareylal Bhargava has undoubtedly laid the Hindi-speaking world under a deep dept of gratitude by his selfless services and he will go down to posterity as the most successful Publisher. He has revolutionised Hindi printing and publishing in so short a time."

आचार्य पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी—बहुत-सी महत्त्व-पूर्ण और मनोरंजक पुस्तकें प्रकाशित करके गंगा-पुस्तकमाला के मालिक हिंदी-साहित्य की अभिवृद्धि में विशेष सहायक हुए हैं। उनके पुस्तक-प्रकाशन का यह क्रम यदि इसी तरह चलता रहा, तो भविष्य में यह अभिवृद्धि अधिकाधिक वृद्धिंगत होती रहेगी।

सुप्रसिद्ध इतिहास-लेखक और कवि श्रीमान् 'मिश्रबंधु'—आपसे हिंदी का जैसा उपकार हुआ और हो रहा है, वैसा भारतेंदु हरिश्चंद्र के पीछे केवल इने-गिने महानुभावों द्वारा हो सका है। आशा है, आगे चलकर आप हिंदी का और भी विशेष हित-साधन कर सकेंगे।

छायावाद के श्रेष्ठ कवि पं० सूर्यकांतजी त्रिपाठी 'निराला'—श्रीदुलारेलालजी भार्गव ने हिंदी की जो सेवा की है, उसका मूल्य निर्द्धारित करना मेरी शक्ति से बिलकुल बाहर है। 'माधुरी' और 'सुधा' में बराबर आप नवीन लेखकों को प्रोत्साहित करते रहे हैं, कितनी ही महिला-लेखिकाएँ तैयार कीं। यह क्रम हिंदी की किसी भी पत्रिका में नहीं रहा। इस प्रोत्साहन-कार्य में भार्गवजी का स्थान सबसे पहले है। लखनऊ-जैसे उर्दू के क़िले में इस तरह हिंदी का विशाल प्रासाद खड़ा कर देना कोई साधारण-सी बात नहीं थी। इसके लिये कितना परिश्रम तथा कितना अध्यवसाय चाहिए, यह मर्मज्ञ मनुष्य अच्छी ही तरह समझ लेंगे!

श्रेष्ठ गद्य-लेखक आचार्य चतुरसेनजी शास्त्री—भार्गवजी आधुनिक हिंदी के दुलारे-युग के प्रवर्तक, ब्रजभाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि, सफल संपादक, लोक-प्रिय प्रकाशक तथा सुप्रसिद्ध मुद्रक हैं। देव-पुरस्कार के सर्वप्रथम विजेता हैं। गंगा-पुस्तकमाला, माधुरी, सुधा, गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस आदि के संस्थापक हैं। कुछ वर्षों के अल्प काल में ही आपने हिंदी की जैसी उन्नति कर दिखाई है, वह बेजोड़ है।

आपके काव्य-ग्रंथ 'दुलारे-दोहावली' पर 'जितनी आलोचना-प्रत्या-लोचना हुई है, उतनी हिंदी के इतिहास में, इतने थोड़े समय में, किसी भी ग्रंथ पर नहीं हुई। यही कारण है कि थोड़े काल में ही उसके अनेक संस्करण हो चुके हैं। आप लखनऊ के सुप्रसिद्ध श्रीनवलकिशोर सी० आई० ई० के वंश के हैं, जिन्होंने हिंदी-साहित्य की अनुपम सेवा करके और उसी की बदौलत एक करोड़ रुपया पैदा करके अपना जन्म धन्य और जीवन अमर कर लिया।

आप अनेक बार अनेक सभाओं और समाजों द्वारा निमंत्रित होकर सभापति का पद सुशोभित कर चुके हैं। संयुक्तप्रांतीय साहित्य-सम्मेलन के सप्तमाधिवेशन के सभापति के पद से आपने गुरुकुल कांगड़ी में जो भाषण किया था, वह महत्त्व-पूर्ण है। आपका सर्वप्रथम सिंध-साहित्य-सम्मेलन का 'संभाषण भी हिंदी-हित-कामना से ओत-प्रोत है। ग्वालियर-हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर अखिल भारतीय हिंदी-कवि-सम्मेलन ने आपकी कविता पर मुग्ध होकर उपस्थित कवियों में आपको प्रथम पुरस्कार दिया, जिसे आपने स्वयं न लेकर पं० पद्मकांतजी मालवीय को, जिनका नंबर दूसरा था, दिलवा दिया। प्रयाग में, द्विवेदी-मेला के समय, हास-परिहास के रंग-मंच पर, अनेक कटाक्षों के उत्तर में आपकी मीठी हास्यमयी रचना ने सब उपस्थित सज्जनों को प्रसन्न किया था। उससे प्रकट होता है कि आप समय पर, तुरंत ही, मनोहर, चुटीली रचना करने में भी समर्थ हैं। हिंदू-विश्वविद्यालय, लखनऊ-विश्व-विद्यालय, नागपुर-विश्वविद्यालय, गुरुकुल कांगड़ी, कन्या-महा-विद्यालय आदि शिक्षा-संस्थाओं में भी कवि-सम्मेलन और वाद-विवादों में सभापति का भार वहन करते हुए आप विद्यार्थियों में हिंदी-प्रेम जाग्रत् करते रहे हैं। सप्तम संयुक्त प्रांतीय कवि-सम्मेलन के सभापति का पद भी आप मेरठ में सुशोभित कर चुके हैं। परसाल

कलकत्ता पधारने पर वहाँ के साहित्य-सेवियों ने आपका अभिनंदन किया था। आप प्रकृति से पर्यटनशील हैं। कश्मीर, पंजाब, बिहार, राजपूताना, सी० पी०, यू० पी०, बुंदेलखंड, मध्य-भारत आदि आपका ख़ूब घूमा हुआ है। इससे आपका अनुभव बहुत बढ़ा है, जो एक सुकवि के लिये अपेक्षित है। आप मिलनसार और प्रेमी सज्जन हैं। आपके सामाजिक विचार अत्यंत उदार हैं। न तो आप प्राचीन भारतीय सभ्यता का सर्वथा नाश ही चाहते हैं, और न प्राचीनता की रूढ़ियों से जकड़े रहकर प्रगतिशील समय से सर्वथा पीछे रह जाना ही पसंद करते हैं। तात्पर्य यह कि आप प्राचीन और नवीन का ऐसा समन्वय चाहते हैं, जो विश्व-कल्याणकारी हो। आप विभिन्न विचार-प्रणालियों को मानव-जीवन के विकास के लिये श्रेयस्कर समझकर उन सबका आदर करते हैं। आप जाति-पाँति में विश्वास नहीं रखते। हिंदू-जाति के संगठन और स्वराज्य-प्राप्ति के लिये आप अंतरजातीय विवाह को आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य समझते हैं। आप सांप्रदायिकता से भी दूर रहते हैं। 'सुधा' और गंगा-पुस्तकमाला के संपादन तथा प्रकाशन और गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस तथा गंगा-ग्रंथागार के संचालन से अवकाश मिलने पर, स्फूर्ति होने पर, आप काव्य की रचना भी करते आए हैं। आप थोड़ा, किंतु अच्छा लिखने की नीति के क़ायल हैं।

दुलारे-दोहावली

महाकवि पं० दुलारेलालजी की इस श्रेष्ठ रचना 'दुलारे-दोहावली' में सब मिलाकर २०८ दोहे हैं। प्रारंभ में, प्रार्थना-शीर्षक में, आठ दोहे हैं। इसके बाद मुख्य ग्रंथ प्रारंभ होता है। इन दोहा-रत्नों को कवि ने यत्र-तत्र बिखेरकर रक्खा है।

'दुलारे-दोहावली' जिस रचना-प्रणाली पर लिखी गई है, उसके अनुसार यह साहित्य-शास्त्र की दृष्टि से एक 'कोष' है, जिसमें २०८

दोहा-रत्न यत्र-तत्र अपने ही आपमें पूर्ण रहकर अपनी कमनीय कांति प्रदर्शित कर रहे हैं। साहित्य-शास्त्र में विवेचकों ने ऐसे 'पद्य-रत्न' को 'मुक्तक' कहा है। पद्यात्मक काव्य के प्रधानतया दो भेद हैं— (१) प्रबंध-काव्य और (२) मुक्तक-काव्य। प्रबंध-काव्य में कवि एक विस्तृत कथानक का आश्रय लेकर काव्य-रचना करने के लिये एक विशाल क्षेत्र चुन लेता है। उसे काव्य-सामग्री को एक विस्तृत क्षेत्र में यथास्थान भर देने की पूर्ण स्वतंत्रता रहती है। उसका काम अभिधा से निकल जाता है, और कथानक की रोचकता के कारण उसमें मनोरमता रहती है। मुक्तककार का क्षेत्र बहुत ही संकीर्ण रहता है, उसी में उसे अपना संपूर्ण कथानक ध्वनि से, गंभीर अर्थ-पूर्ण शब्दों में, झलकाना पड़ता है। जहाँ प्रबंध-काव्य में छंद शृंखला-संबद्ध रहने के कारण आगे-पीछे के पद्यों का सहारा लेकर अपनी रक्षा कर सकते हैं, वहाँ मुक्तक-छंद को स्वतंत्र रूप से एकाकी रहकर अपना गौरव पूर्ण प्रबंध के सामने स्थापित करना पड़ता है। अतः खंड काव्य, महाकाव्य आदि लिखने की अपेक्षा मुक्तक लिखना विशेष महत्त्व-पूर्ण है।

यह सत्य है कि मुक्तक की रचना काव्य-कला-कुशलता का चरम आदर्श है। एक पूरे प्रबंध (ग्रंथ) में कवि को विस्तृत कथानक का आश्रय लेकर रस-स्थापना का जो कार्य करना पड़ता है, वही कार्य एक छोटे-से मुक्तक में कर दिखाना विलक्षण काव्य-रचना-सामर्थ्य की अपेक्षा रखता है। कथानक का विस्तृत वर्णन न करके अर्थात् उसका आश्रय न लेकर एक छोटे-से छंद में इतना रस भर देना कि रसिक अगली-पिछली कथा का आश्रय लिए बिना ही उसके आस्वादन से तृप्त हो जाय, सचमुच असाधारण प्रतिभा का काम है। एक ही स्वतंत्र पद्य में विभाव, अनुभाव और संचारी भावों से परिपूर्ण रस का सागर लहराना, एक संपूर्ण आख्यायिका को थोड़े-से ध्वन्यात्मक शब्दों में भर दिखाना, कथन-शैली में एक निराला बाँकपन—एक निराला

चमत्कार पैदा करना, उपमान-उपमेयों द्वारा समान दृश्य दिखलाकर भाव-साधर्म्य अथवा भाव-वैधर्म्य के आलंकारिक वेष को सजाना और सब के ऊपर देश-काल-पात्र के अनुकूल, स्वाभाविक प्रवाहमयी, आलंकारिक और मुहावरेदार, अर्थमयी, नपी-तुली, भावानुकूल, प्रांजल भाषा का सहज-सुकुमार प्रयोग करना सचमुच भारी क्षमता का काम है। मुक्तक की रचना प्रधानतया व्यंग्य-प्रधान उत्तम काव्य में होती है। मानव-स्वभाव का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषण करना और प्रकृति-पर्यवेक्षण एवं प्रकृति की अनुभूति के साथ गहन-से-गहन निगूढ़ रहस्यों का उद्घाटन करना मुक्तकों की रचना का आदर्श होता है। विद्वद्वर पंडित पद्मसिंह शर्मा ने ठीक ही लिखा है—

"मुक्तक की रचना कविता-शक्ति की परा काष्ठा है। महाकाव्य, खंड काव्य या आख्यायिका आदि में यदि कथानक का क्रम अच्छी तरह बैठ गया, तो बात निभ जाती है। कथानक की मनोहरता पाठक का ध्यान कविता के गुण-दोष पर नहीं पड़ने देती। कथा-काव्य में हज़ार में दस-बीस पद्य भी मार्के के निकल आए, तो बहुत हैं। कथानक की सुंदर संघटना, वर्णन-शैली की मनोहरता और सरलता आदि के कारण कुल मिलाकर काव्य के अच्छेपन का प्रमाण-पत्र मिल जाता है। परंतु मुक्तक की रचना में कवि को गागर में सागर भरना पड़ता है। एक ही पद्य में अनेक भावों का समावेश और रस का सन्निवेश करके लोकोत्तर चमत्कार प्रकट करना पड़ता है।...इसके लिये कवि का सिद्ध सारस्वतीक और वश्यवाक् होना आवश्यक है। मुक्तक की रचना में कवि को रस की अक्षुण्णता पर पूरा ध्यान रखना पड़ता है, और यही कविता का प्राण है।"

(सतसई-संजीवन-भाष्य, भू० भा०)

यद्यपि यथार्थ में रसमय काव्य ही काव्य है, पर कुछ ऐसे काव्य भी लिखे जाते हैं, जो नीति एवं धर्म आदि के उपदेश को प्रधानतया

प्रतिपादित करनेवाले होते हैं। इनमें बहुधा रस का अभाव रहता है, सुभाषित-मात्र इनमें रहता है, जिसमें केवल वाग्वैदग्ध्य का चमत्कार होता है। मुक्तक भी इस पर बहुतायत से लिखे जाते हैं। ऐसे सूक्ति-प्रधान मुक्तकों की रचना नीति और धर्म आदि के उपदेश देने के उद्देश्य से की जाती है। इनमें भी कथन-शैली का बाँकपन और शब्द-चमत्कार का समावेश होना आवश्यक होता है, क्योंकि इनके विना सूक्ति-प्रधान उत्तम मुक्तक नहीं रचे जा सकते। रस को छोड़कर अन्य काव्यांगों का समुचित समावेश इनमें अत्यंत संक्षेप में करना पड़ता है।

काव्य की अभिव्यक्ति सर्वोत्कृष्टतया व्यंग्य में होती है, इसीलिये अनेक साहित्य-रीति-ग्रंथकार, महामति विवेचकों ने व्यंग्य-प्रधान काव्य को श्रेष्ठता दी है। बहुत-से आचार्य और आगे बढ़ गए हैं; रस की अभिव्यक्ति के लिये भी सबल होने के कारण ध्वनिमय व्यंग्य को काव्य की आत्मा घोषित किया है। इस प्रकार की रस-ध्वनि-पूर्ण काव्य-रचना करनेवाले ही महाकवि कहलाते हैं। यह व्यंग्य काव्य में ध्वनि से उसी प्रकार झलकता है, जिस प्रकार अंगना का लावण्य उसके सुंदर शरीर से। धुरंधर काव्य-मर्मज्ञ आनंदवर्द्धनाचार्य लिखते हैं—

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव
वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम् ;
यत्तत्प्रसिद्धावयवातिरिक्तं
विभाति लावण्यमिवांगनासु। (ध्वन्यालोक १।४)

"महाकवियों की वाणी में वाच्य अर्थ के अतिरिक्त प्रतीयमान अर्थ एक ऐसी चमत्कारक वस्तु है, जो अंगना के अंग में हस्तपादादि प्रसिद्ध अवयवों के अतिरिक्त लावण्य की तरह चमकती है।"

दुलारे-दोहावली के मुक्तक

इस प्रकार के मुक्तक और वे भी रस, ध्वनि और भावानुगामिनी उत्कृष्ट काव्य-भाषा से युक्त, दुलारे-दोहावली में, यत्र-तत्र-सर्वत्र बिखरे

हुए देख पड़ते हैं। यद्यपि ऐसा जान पड़ता है कि दोहावली में आदि से अंत तक कोई क्रम नहीं, क्योंकि प्रत्येक पद्य मुक्तक होने से स्वतंत्र है, फिर भी विषय-विचार की दृष्टि से दुलारे-दोहावली में क्रम है, जो ध्यान से देखने पर मालूम हो जायगा। दोहावली के ये दोहे भाषा और भाव की दृष्टि से परमोत्कृष्ट हुए हैं। 'सूक्ति' के दोहे भी बड़े चुटीले और अनूठे काव्य के उदाहरण हैं। उनमें भी कथन-शैली के तीखेपन के साथ मधुर कसक-पूर्ण बाँकपन पाया जाता है। इस दोहावली को सूक्ष्म तथा गहन दृष्टि से देखने पर गागर में सागर दिखलाई पड़ने लगता है। इतने विषयों को, इतने थोड़े में, इतने अनूठे ढंग से, सरल काव्य में लिखना और उसमें भी ऐसा कुछ लिख जाना, जो बड़े-बड़े विद्वान् व्यक्ति भी न लिख सके थे, सचमुच असाधारण प्रतिभा का काम है। हमारे दोहावलीकार ने ऐसा ही किया है।

गागर में सागर

इस एक ही छोटे काव्य-कोष में इतना भर देना यह सिद्ध करता है कि इसके पूर्व रचयिता ने बहुत कुछ देखा-भाला है, और उसका हृदय असंख्य अनुभूतियों का आगार बन चुका है। इसमें कवि ने जिस विषय को उठाया है, उसका बड़ा ही सच्चा, अनुभूत, हृदय-ग्राही और भावमय चित्र, अत्यंत मनोरम, भावानुगामिनी भाषा में, उपस्थित कर दिया है। सजीव कल्पना-मूर्तियों द्वारा शाश्वत-प्रकृति के अंतरंग और बहिरंग का रमणीय वर्णन साहित्य-शास्त्रानुमोदित उत्कृष्ट कवि-कौशल से करने में दुलारे-दोहावलीकार को अभिनंदनीय सफलता मिली है। विशुद्ध भारतीय भावनाओं को मानव-प्रकृति को ग्राह्य, विशद कलात्मक रीति से उपस्थित करने में कवि का कौशल देखते ही बन पड़ता है। इस काव्य-कोष में ऐसे-ऐसे अनमोल मुक्तक-रत्न हैं, जिनका मूल्य आँकना बड़े-बड़े जौहरियों का ही काम है।

इसमें कवि का प्रकृति-पर्यवेक्षण और विशाल अनुभव स्पष्टतया परिलक्षित होता है।

दोहावली में काव्यांग

दुलारे-दोहावली में अनेक काव्यांगों के बहुत ही प्रकृष्ट और विशुद्ध उदाहरण पाए जाते हैं। यहाँ कुछ का उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा। निम्न-लिखित उदाहरणों से कवि का काव्य-रीति का मार्मिक ज्ञाता होना सूचित होता है। निम्न-लिखित उद्धरणों में लाक्षणिक पद्धति का मनोमोहक चमत्कार दर्शनीय है—

कलहांतरिता—

नाह-नेह-नभ तें सजनि, टारि रोस को राहु—
पिय-मुख-चंद दिखाहु प्रिय, तिय-कुमुदिनि बिकसाहु।

वय-संधि—

देह - देस लाग्यौ चढ़न इत जोबन - नरनाह,
पगन-चपलई उत लई जनु दृग - दुरग - पनाह।

विरह-निवेदन—

झपकि रही, धीरैं चलौ; करौ दूरि तें प्यार;
पीर-दब्यौ दरकै न उर चुंबन ही के भार।

प्रवत्स्यत्पतिका—

तन - उपबन सहिहै कहा बिछुरन - झंझाबात,
उड़्यौ जात उर-तरु जबै चलिबे ही की बात?

आगतपतिका—

मुकता सुख-अँसुआ भए, भयौ ताग उर - प्यार;
बरुनि-सुई तें गूँथि दृग देत हार उपहार।

व्यतिरेक—

दमकति दरपन-दरप दरि दीपसिखा-दुति देह;
वह दृढ़ इक दिसि दिपत, यह मृदु दस दिसनि, स-नेह।

उत्प्रेक्षा—

कढ़ि सर तें द्रुत दै गई दृगनि देह-दुति चौंध ;
बरसत बादर-बीच जनु गई बीजुरी कौंध।

दोहावली में अलंकार

दुलारे-दोहावली में वैसे तो अनेक अलंकारों का वर्णन है, और ख़ूब है; परंतु कविवर दुलारेलाल का पूर्ण कौशल रूपक-अलंकार के उत्कृष्ट वर्णनों में परिलक्षित होता है। स्मरण रहे, उपमा की अपेक्षा रूपक का निर्वाह कठिन होता है। इसमें भी परंपरित सावयव सम अभेद रूपक लिखना तो पूर्ण कवित्व-सामर्थ्य की अपेक्षा रखता है। प्रस्तुत दोहावली में कविवर ने सावयव सम अभेद रूपक-अलंकार की पूर्ण छटा बहुत-से दोहों में, बड़े ही कौशल से, छहराई है। किसी विषय को उठाकर, उसके उचित उपकरणों को सजाकर, वैसे ही भाव-साधर्म्य का दूसरा सावयव दृश्य उपस्थित कर उसमें आदि से अंत तक सम अभेद रूपक का निर्वाह कर ले जाना विलक्षण प्रतिभा, प्रबल कल्पना और व्यापक ज्ञान के साथ-साथ सरस अनुभूति का परिचायक है। अब तक रूपकों की अनुपम छटा के लिये बिहारी-सतसई की ही सर्वापेक्षा अधिक प्रसिद्धि और सम्मान है। पर दुलारे-दोहावली के उत्कृष्ट रूपकों की परंपरित सावयव सम अभेद रहने की काव्य-चातुरी देखकर अब विवश होकर यही कहना पड़ता है कि उत्कृष्ट रूपकों की दृष्टि से दुलारे-दोहावली के दोहे बिहारी-सतसई के दोहों का सफलता से मुक़ाबिला करते हैं। ऐसे दो-चार रूपक यहाँ देखिए—

हृदय कूप, मन रहँट, सुधि-माल माल, रस राग ,
बिरह बृषभ, बरहा नयन, क्यों न सिंचै तन-बाग ?
नाह - नेह - नभ तें सजनि, टारि रोस को राहु—
पिय-मुख-चंद दिखाहु प्रिय, तिय-कुमुदिनि बिकसाहु।

चित - चकमक पै चोट दै, चितवन-लोह चलाइ—
लगन-लाइ हिय-सूत में ललना गई लगाइ।
रही अछूतोद्धार - नद छुआछूत - तिय डूबि ;
सासन की तिनकौ गहति क्रांति-भँवर सों ऊबि।
दंपति-हित-डोरी खरी परी चपल चित-डार,
चार चखन-पटरी अरी, झोंकनि झूलत मार।

भाषा

दुलारे-दोहावली की भाषा प्रौढ़ साहित्यिक ब्रजभाषा है। स्मरण रहे, प्राचीन काल ही से साहित्यिक ब्रजभाषा में अत्यंत प्रचलित फ़ारसी, बुंदेलखंडी, अवधी और संस्कृत के तत्सम शब्दों का थोड़ा-बहुत प्रयोग होता रहा है। ब्रजभाषा के किसी भी कवि की भाषा का बारीकी से अध्ययन करने पर उपर्युक्त बात का पता सहज ही चल सकता है। कुछ प्राचीन कवियों ने तो अनुप्रास और यमक के लिये भाषा को इतना तोड़ा-मरोड़ा है कि शब्दों के रूप ही विकृत हो गए हैं। यद्यपि दोहावलीकार ब्रजभाषा के निर्माता सूर, बिहारी आदि कवीश्वरों द्वारा अपनाए गए बुंदेलखंडी, अवधी और फ़ारसी के अत्यंत प्रचलित शब्दों का बहिष्कार करना अनुचित मानते हैं, पर उन्होंने प्रायः ब्रजभाषा के विशुद्ध रूप को ही अपनी रचना में अपनाया है। दूसरी प्रांतीय हिंदी-बोलियों अथवा फ़ारसी के शब्दों का आपने इने-गिने दस-पाँच स्थलों पर ही, जहाँ उचित समझा है, प्रयोग किया है। आपने अत्यंत प्रचलित अँगरेज़ी-शब्दों का भी दो-चार दोहों में प्रयोग किया है; परंतु ऐसे स्थलों में प्रयुक्त अँगरेज़ी-शब्द वे हैं, जिनके पर्यायवाची शब्द हिंदी में नहीं मिलते, और जिन्हें आज जनता भली भाँति समझती है। जैसे—

सासन - कृषि तें दूर दीन प्रजा - पंछी रहैं,
सासक - कृषकन क्रूर आर्डिनेंस - चंचौ रच्यौ।

इसमें आर्डिनेंस का प्रयोग ऐसा ही हुआ है।

एक और भी उदाहरण दर्शनीय है, जिसमें प्रचलित अँगरेज़ी-शब्दों के प्रयोग द्वारा कविवर श्रीदुलारेलाल ने 'भाषा-समक'-अलंकार रक्खा है—

सत-इसटिक जग-फील्ड लै जीवन-हाकी खेलि ;
वा अनंत के गोल में आतम-बालहिं मेलि।

दोहावली की भाषा में बोलचाल की स्वाभाविकता और ज़बाँदानी का चमत्कार सर्वत्र दर्शनीय है। पद-मैत्री का भी सौष्ठव है। अनुप्रास, श्लेष और यमक का बड़ा ही औचित्य-पूर्ण, रसानुकूल, सुंदर प्रयोग किया गया है। माधुर्य, प्रसाद और ओज की अनेक दोहों में निराली छटा आ गई है। यहाँ स्थानाभाव के कारण भाषा-सौंदर्य के विषय में अधिक न लिखकर मैं दोहावली के शब्दालंकारों की छटा की कुछ झलक दिखलाता हूँ—

अनुप्रास—

संतत सहज सुभाव सों सुजन सबै सनमानि—
सुधा-सरस सींचत स्रवन सनी-सनेह सुबानि।
कियौ कोप चित-चोप सों, आई आनन ओप,
भयौ लोप पै मिलत चख, लियौ हियौ हित छोप।
स्याम-सुरँग-रँग-करन-कर रग-रग रँगत उदोत ;
जग-मग जगमग जगमगत, डग डगमग नहिं होत।
गुंजनिकेतन-गुंज-जुत हुतौ कितौ मनरंज !
लुंज-पुंज सो कुंज लाख क्यों न होइ मन रंज ?
नंद-नंद सुख-कंद को मंद हँसत मुख-चंद,
नसत दंद-छलछंद-तम, जगत जगत आनंद।

यमक—

बार बित्यौ लखि, बार झुकि बार बिरह के बार—
बार - बार सोचति—"करी केती बार लबार ?"
खरी साँकरी हित - गली, बिरह - काँकरी छाइ—
अगम करी तापै अली, लाज-करी बिठराइ ।

श्लेष—

मन - कानन में धँसि कुटिल, काननचारी नैन—
मारत मति - मृगि मृदुल, पै पोसत मृगपति - मैन !
सखी, दूरि राखौ सबै दूती - करम - कलाप ;
मन - कानन उपजत - बढ़त प्यार आप - ही - आप ।

दोहावली की भाषा परिमार्जित, व्याकरण-विशुद्ध और शब्दालंकारों से सुसज्जित है । उसमें असमर्थ, विकृत तथा अप्रयुक्त शब्द नहीं हैं, एवं उसकी सबसे बड़ी विशेषता है समास में कहने की प्रणाली । अत्यंत संक्षेप में विशाल अर्थ भरने में दोहावलीकार ने प्रशंसनीय सफलता प्राप्त की है । इसे देखकर रहीम के इस दोहे का स्मरण हो आता है—

दीरघ दोहा अरथ के, आखर थोरे आहिं ,
ज्यों 'रहीम' नट कुंडली सिमिटि, कूदि कढ़ि जाहिं ।

दोहावली की विशेषता और उसका अंतरंग

दुलारे-दोहावली में हम ब्रजभाषा की कोमल-कांत पदावली में—भावानुगामिनी तथा काव्य-गुण-संपन्न भाषा में शृंगार और करुण-रस के कोमलतम मनोभावों की मंजुल, सजीव कल्पना-मूर्तियाँ, वीर-रस की ओजस्विनी उक्तियाँ, देश-प्रेम का छलकता हुआ प्याला, शांत-रस की सुधा-धारा और राष्ट्रीयता एवं नीति की चुटीली, ज़ोरदार सूक्तियाँ पाते हैं । इन सबका वर्णन कवि ने उत्कृष्टतया किया है । यद्यपि दोहावली के दोहों में अनेक विषयों एवं रसों का वर्णन है, पर

प्रधानता शृंगार-रस की है। शृंगार-रस की रचना में भी संयत प्रकृति के सुकवि ने निर्लज्जता-पूर्ण, उद्वेग-जनक वर्णन को छुआ तक नहीं। दुलारे-दोहावली के शृंगार-वर्णन के दोहे विशुद्ध रति-भाव के द्योतक हैं, जिनमें 'अनंग' काम अशरीरी होकर ही आया है। यथार्थ में कविवर ने भावधारा-प्रधान साहित्य के मुख्य भाव प्रेम की अभिव्यंजना और अलौकिक सौंदर्य की ही अवतारणा अपने शृंगार-रस के दोहों में की है। आपने लौकिक अर्थात् नर-नारी-संबंधी और अलौकिक अर्थात् परमात्मा-संबंधी द्विविध शृंगार के संयोग-वियोगात्मक वर्णनों में प्रेम की प्रधानता रखकर अनुभावों का कलामय चमत्कार दिखलाया है। यही एक ऐसे कवि हैं, जो शृंगार-रस के अनेक सफल चित्र उपस्थित करने में उद्वेग को सर्वथा बचा गए हैं। इसके लिये कवि की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। आप कुलटा और गणिका तक के भावमय, काल्पनिक शब्द-चित्रों में उद्वेग का अभाव ही देखेंगे। ऐसे दो उदाहरण यहाँ देखिए—

कुलटा—

लक लचाइ, नचाइ दृग, पग उँचाइ, भरि चाइ,
सिर धरि गागरि, मगन, मग नागरि नाचति जाइ।

गणिका—

मृदु हँसि, पुनि-पुनि बोलि प्रिय, कै रूखो रुख बाम—
नेह उपै, पालै, हरै, लै बिधि - हरि - हर - काम।

दोहावलीकार ने रस-व्यंजना का वैभव अनुभावों और हावों की सरस योजना में प्रदर्शित किया है। कुछ उदाहरण लीजिए—

झपटि लरत, गिरि-गिरि परत, पुनि उठि-उठि गिरि जात;
लगनि-लरनि चख-भट चतुर करत परसपर घात।
ऊँच - जनम जन, जे हरैं नित नमि-नमि पर - पीर;
गिरिवर तें ढरि-ढरि धरनि सींचत ज्यों नद - नीर।

भावों के घात-प्रतिघात का भी कविवर श्रीदुलारेलाल ने अनूठा वर्णन किया है। जैसे—

जीवन - धन - जय - चाह, धन कंकन - बंधन करति ;
उत तन रन - उतसाह, इत बिछुरन की पीर मन।
तिय उलही पिय - आगमन, बिलखी दुलही देखि ;
सुखनभ-दुखधर - बीच छन मन-त्रिसंकु-गति लेखि।

संयोग-शृंगार के वर्णन में भी कवि ने रति-भाव की सरस अनुभूति की अभिव्यंजना को ही प्रधानता दी है। जैसे—

लेत-देत संदेस सब, सुनि न सकत कछु कोय ;
बिना तार को तार जनु कियौ दृगनु तुम दोय।
बही जु आवन - बात में, मूँदि लिए दृग लाल ;
नेह - गही उलही, रही मही - गड़ी-सी बाल।
दंपति - हित - डोरी खरी परी चपल चित-डार,
चार चखन - पटरी अरी, झोंकनि झूलत मार।

दुलारे-दोहावली में प्रधानतया विप्रलंभ या वियोग-शृंगार का वर्णन पाया जाता है। कविवर ने इसमें भाव-व्यंजना या रस-व्यंजना के अतिरिक्त वस्तु-व्यंजना का भी आश्रय लिया है, परंतु इनकी वस्तु-व्यंजना औचित्य की सीमा का उल्लंघन करके खिलवाड़ के रूप में कहीं नहीं हुई है। इनके भावों में स्वाभाविक मृदुता और सरसता है। सहृदय भावुक कवि ने अन्यान्य कवीश्वरों के समान विरह के ताप को लेकर खिलवाड़ नहीं किया है, फिर भी इनका विरह-वर्णन बड़ा ही तीव्र और चुटीला है। यहाँ दो-चार उदाहरण देखिए—

कठिन बिरह ऐसी करी, आवति जबै नगीच—
फिरि-फिरि जाति दसा लखे कर दृग मीचति मीच।
नई लगन किय गेह, अली, लली के ललित तन ;
सूखत जात अछेह, तरु ज्यों अंबरबेलि सों।

तचत बिरह-रबि उँर - उदधि, उठत सघन दुख-मेह,
नयन-गगन उमड़त घुमड़ि, बरसत सलिल अछेह।
धाय धरति नहिं अंग जो मुरछा-अली अयान,
उमगि प्रान - पति - संग तो करतो प्रान पयान।
बिरह - सिंधु उमड़यौ इतौ पिय - पयान - तूफान,
बिथा - बीचि - अवली अली, अथिर प्रान - जलजान।
जोबन - उपबन - खिलि अली, लली - लता मुरझाय!
ज्यों - ज्यों भीजै प्रेम - रस, त्यों - त्यों सूखति जाय।
धन - बिछुरन - छन - कन भए मन कौं मन-मन-ढेरि;
अँसुवन - कन - मनकन रही प्रीति - सुमिरनी फेरि।

कविवर ने भक्ति-शृंगार के वर्णन को भी अपनी दोहावली में, उचित मात्रा में, अनूठे ढंग से, रक्खा है। यहाँ दो-एक उदाहरण दृष्टव्य हैं—

श्रीराधा - बाधाहरनि - नेहअगाधा - साथ—
निहचल नयन - निकुंज में नचौ निरंतर नाथ!
गुंजहार गर, गुंजकर बंसी कर हरि, लेहु;
उर - निकुंज गुंजाइ धर - रोर - पुंज हरि लेहु।

श्रीकृष्ण-भक्ति की वैष्णव-संप्रदायों की इस सखी-भक्ति के अतिरिक्त आपने रहस्यवादियों की शृंगार-भक्ति के भी दोहे कहे हैं। कुछ दोहे यहाँ देखिए—

नीच मीच कों मत कहै, जनि उर करै उदास;
अंतरंगिनी, प्रिय अली पहुँचावति पिय - पास।
समय समुझि सुख-मिलन को, लहि मुख-चंद-उजास,
मंद - मंद मंदिर चली लाज - मुखी पिय - पास।
उर-धरकनि-धुनि माहिं सुनि पिय-पग-प्रतिधुनि कान—
नस-नस तें नैननि उमहि आए उतसुक प्रान।

चहूँ पास हेरत कहा करि-करि जाय प्रयास ?
जिय जाके साँची लगन, पिय वाके ही पास !

शांत-रस और भक्ति की सुधा-धारा भी कविवर ने अपने अनेक दोहों में अत्युत्कृष्टतया प्रवाहित करने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है। इस बात के प्रमाण-स्वरूप निम्न-लिखित दो-चार दोहे देखिए—

माया - नींद भुलाइकें, जीवन - सपन - सिहाइ,
आतम - बोध बिहाइ तैं मै - तै ही बरराइ !
जगि जगि, बुझि-बुझि जगत में जुगुनू की गति होति ;
कब अनंत परकास सों जगिहै जीवन - जोति ?
दरसनीय सुनि देस वह, जहँ दुति-ही-दुति होइ,
हौं बौरौ हेरन गयो, बैठ्यौ निज दुति खोइ।

इसी में योग-वर्णन का यह दोहा भी दर्शनीय है—

इड़ा - गंग, पिंगला - जमुन, सुखमन - सरसुति-संग—
मिलत उठति बहु अरथमय, अनुपम सबद - तरंग।

भक्ति-वर्णन के निम्न-लिखित दोहे भी देखिए, कैसे अनूठे हैं—

कब तें, मन - भाजन लएँ, खरौ तिहारे द्वार !
दरसन - दुति - कन दै हरौ मति-तम-तोम अपार।
अगम सिंधु जिमि सीप - उर मुकता करत निवास ,
तिमिर-तोम तिमि हृदय बसि करि हृदयेस ! प्रकास।
चख - खंजन परि किरकिरी अंजन डारति धोइ ;
अखिल निरंजन जो बसै, क्यों न निरंजन होइ ?
ग्राह-गहत गजराज की गरज गहत व्रजराज—
भजे 'गरीबनिवाज' को बिरद बचावन - काज।
नंद नंद सुख - कंद को मंद हँसत मुख-चंद ,
नमत दंद-छलछंद-तम, जगत जगत आनंद।

चेतावनी के भी बड़े ही चुटीले और गंभीर दोहे हैं—

जगत - जलधि में तन-तरी परी अरी, मँझधार ;
मन-मलाह जो बस करै, निहचै उतरै पार ।
गई रात, साथी चले, भई दीप-दुति मंद,
पियत मोह-मदिरा कहा ? अजहुँ चेति मति-मंद !
जोति-उघरनी तें अजहुँ खोलि कपट-पट-द्वारु—
पंजर-पिंजर तें प्रभो, पंछी-प्रान उबारु ।

कविवर दुलारेलाल ने अनेक दोहों में सजीव प्रतिमाओं की तस-वीरें खींच दी हैं, जैसे—

नई सिकारिन-नारि, चितवन - बंसी फेंकिकें,
चट घूँघट-पट डारि, चंचल चित-झख लै चली ।
लंक लचाइ, नचाइ दृग, पग उँचाइ, भरि चाइ,
सिर धरि गागरि, मगन, मग नागरि नाचति जाइ ।
बार चित्यौ लखि, बार झुकि बार बिरह के बार—
बार-बार सोचति—"करी केती बार लबार ?"
जोबन-बन-सुख-लीन मन-मृग दृग-सर बेधि जनु—
धन-ब्याधिनि परबीन बाँधति अलकन-पास में ।

दोहावली में ऐसे दोहे बहुत हैं, जिनमें बातें इस प्रकार से कही गई हैं कि जी में बैठ जाती हैं । मन कहता है—वाह ! ऐसे पाँच दोहे नीचे दिए जाते हैं—

पुर तें पलटे पीय की पर-तिय-प्रीतिहिं पेखि —
बिछुरन-दुख सों मिलन-सुख दाहक भयौ बिसेखि ।
बिरह-बिजोगिनि कौ करत सपन सजन-संजोग ;
सखि, समाधि हू सों सरस नींद, न नींदन-जोग ।
हौं सखि, सीसी आतसी, कहति साँच-ही-साँच ;
बिरह-आँच खाई इती, तऊ न आई आँच !

सोवत कंत इकंत, चहुँ चितै रही मुख चाहि ;
पै कपोल पै ललक लखि भजी लाज-अवगाहि ।
धाय धरति नहिं अंग जो मुरछा-अली अयान,
उमगि प्रान-पति-संग तो करतो प्रान पयान ।

वीर-रस की अभिव्यंजना में जो दोहे लिखे गए हैं, उनमें कवि को अपूर्व सफलता मिली है । यहाँ दो-चार दोहे देखिए—

करी करन अकरन करनि करि रन कवच-प्रदान ;
हरन न करि अरि-प्रान निज करनि दिए निज प्रान ।
दुष्ट दुसासन दलमल्यौ भीम भीमतम-भेस,
पाल्यौ प्रन, छाक्यौ रकत, बाँधे कृस्ना-केस ।
दुष्ट दनुज-दल-दलन कों धरे तीच्छन तरवार—
देश शक्ति दुर्गावती दुर्गा को अवतार ।
छुट्यो राज, रानी बिकी, सहत डोम-गृह दंद,
मृत सुत हू लखि प्रियहिं तें कर माँगत हरिचंद !

इन दोहों में ओज और वीर-रस की अभिव्यंजना का हृदयहारी कौशल देखते ही बनता है !

नीति-वर्णन की सूक्तियों में भी दुलारे-दोहावली में अद्भुत चमत्कार आया है । देखिए—

संगत के अनुसार ही सबकौ बनत सुभाइ ;
साँभर में जो कछु परै, निरो नोंन ह्वै जाइ ।
होत निरगुनी हू गुनी बसे गुनी के पास ;
करत लुएँ खस सलिलमय सीतल, सुखद, सुबास ।
नियमित नर निज काज-हित समय नियत करि लेय;
रजनी ही में गंध ज्यों रजनी-गंधा देय ।
संतत सहज सुभाव सों सुजन सबै सनमानि—
सुधा-सरस सींचत स्रवन सनी-सनेह सुबानि ।

सुखद समै संगी सबै, कठिन काल कोउ नाहिं ;
मधु सोहैं उपबन सुमन, नहिं निदाघ दिखराहिं ।
जुद्ध-मद्ध बल सों सबल कला दिखाई देति ;
निरबल मकरिहु जाल बुनि सरप-दरप हरि लेति ।

सौंदर्य-वर्णन में कवि ने मानुषी रूप और प्रकृति का श्लाघ्य वर्णन किया है । स्मरण रहे, कला में सौंदर्य प्रधान है । इसी से कवि सौंदर्य का वर्णन करता है । बाह्य प्रकृति के सौंदर्य का वर्णन संसार के संपूर्ण श्रेष्ठ कवि सदा से करते आए हैं । कविवर दुलारेलाल के ऐसे वर्णनों में जो श्रेष्ठता है, उसे सौंदर्य-प्रेमी पाठक निम्न-लिखित दोहों में पाएँगे । मानुषी रूप का वर्णन देखिए—

बिंब बिलोकन कों कहा झमकि झुकति झर-तीर ?
भोरी, लखि तुव बदन-छबि होत बिकल, चल नीर !
चख-झख तव दृग-सर-सरस-बूडि, बहुरि उतराय —
बेंदी-छटके में छटकि अटकि जात निरुपाय ।
झीनें अंबर झलमलति उरजनि-छबि छितराइ ;
रजत-रजनि जुग चंद-दुति अंबर तें छिति छाइ ।
मोह मूरछा लाइ, करि चितवन-करन-प्रयोग ;
छबि-जादूगरनी करति बरबस बस चित-लोग ।
कढ़ि सर तें द्रुत दै गई दृगनि देह-दुति चौंध ;
बरसत बादर-बीच जनु गई बीजुरी कौंध ।
रमनी-रतननि हीर यह, यह साँचो ही सोर ;
जेती दमकति देह-दुति, तेतौ हियौ कठोर !

प्राकृतिक वर्णनों में भी विलक्षण सौंदर्य के साथ कवि ने काल्पनिक भाव-सौंदर्य का अभिन्न मेल मिलाकर हृदयग्राही सौंदर्य की सृष्टि की है । स्मरण रहे, जन-साधारण की दृष्टि से कवि की दृष्टि कुछ विलक्षण होती है । शुभ्र-सलिला सरिता जन-साधारण की दृष्टि में

शुभ्र-सलिला सरिता-मात्र है, पर कवि की दृष्टि में उस शुभ्र-वसना सुंदरी का शरीर श्रृंगार की क्रीड़ा-भूमि है। निम्न-लिखित दोहों से पाठकों को कविवर दुलारेलाल के प्राकृतिक सौंदर्य-वर्णन की महत्ता भली भाँति विदित हो सकेगी। देखिए—

हिममय परबत पर परति दिनकर-प्रभा प्रभात ;
प्रकृति-परी के उर परयौ हेम-हार लहरात।
नखत-मुकत आँगन-गगन प्रकृति देति बिखराय,
बाल हंस चुपचाप चट चमक-चोंच चुगि जाय।
जनु जु रजनि-बिछुरन रहे पदुमिनि-आनन छाइ,
ओस-आँसु-कन सो करन पोंछत रबि-पिय आइ।
दिन-नायक ज्यों-ज्यों बढ़त करनि सप्रीति पसारि,
सकुचि, सिमिटि, रहि-रहि हटति निसि-नवनारि निहारि।
लरिकाईं-ऊषा दुरी, झलक्यौ जोबन-प्रात,
छई नई छबि-रबि-प्रभा बाल-प्रकृति के गात।
लखि जग-पंथी अति थकित, संझा-बाँह पसारि—
तम-सरायँ में दे रही छाँहँ छपा-भटियारि।
जटित सितारन-छंद, अंबर अंगनि झलमलत ;
चली जाति गति मंद, सजनि-रजनि मुख-चंद-दुति।
चंचल अंचल छलछलति जिमि मुख-छबि अवदात,
सित घन छनि-छनि झलमलनि तिमि दिनमनि-दुति प्रात।

हमें आश्चर्य होता है, जब हम देखते हैं कि इतने संकुचित स्थल में कविवर उपर्युक्त विषयों के सिवा देश-प्रेम और राष्ट्रीय भावों के वर्णनों की उपेक्षा न करके उनका उदात्त और समुज्ज्वल वर्णन कर सके हैं।

मातृभूमि-वंदना का निम्न-लिखित दोहा कवि के अगाध देश-प्रेम का साक्षी है—

मम तन तव रज-रीज, तव तन मम रज-रज रमत ;
करि बिधि-हरि-हर-काज सतत सृजहु, पालहु, हरहु ।

इसके सिवा राष्ट्रीय भावनाओं से परिपूर्ण निम्न-लिखित गंभीर दोहे तो सर्वथा अनूठे ही हैं । देखिए—

झर-सम दीजै देस - हित झर - झर जीवन - दान ;
रुकि-रुकि यों चरसा - सरिस देबौ कहा सुजान !
गांधी-गुरु तें ग्यौन लै, चरखा - अनहद - जोर—
भारत सबद - तरंग पै बहत मुकति की ओर ।
पर-राष्ट्रन-अरि-चोट तें धन - स्वतंत्रता - कोट—
तटकर - परकोटा बिकट राखत अगम, अगोट ।

कुछ अन्योक्तियाँ भी दर्शनीय हैं—

सुरस - सुगंध - बिकास - बिंधि चतुर मधुप मधु-अंध !
लयौ पदुमिनी - प्रेम परि भलो ग्यौन को धंध !!
बसि ऊँचे कुट यों सुमन ! मन इतरैए नाहिं ;
यह बिकास दिन द्वैक को, मिलिहै माटी माहिं ।
बात - झूलि रे फूल, यों निज श्री - भूलि न फूलि ;
काल कुटिल को कर निरखि, मिलन चहत तैं धूलि ।

राष्ट्र की प्रधान समस्या इस समय अछूतोद्धार और अस्पृश्यता-निवारण है । इसके विषय में सहृदय कलाकार कवि ने बड़ी ही ज़ोरदार सूक्तियाँ कही हैं । तीन दोहे यहाँ द्रष्टव्य हैं—

रही अछूतोद्धार - नद छुआछूत - तिय डूबि ;
सास्त्रन कौ तिनकौ गहति क्रांति - भँवर सों ऊबि ।
कलिजुग ही मैं मैं लखी अति अचरजमय बात—
होत पतित - पावन पतित, छुवत पतित जब गात ।
छुआछूत - नागिन - डसी परी जु जाति अचेत ,
देत मंत्रना - मंत्र तें गांधी - गारुड़ि चेत ।

अनेक दोहों में वैज्ञानिक सिद्धांतों का भी बड़ा ही अनूठा समावेश किया गया है। ऐसे दोहे देखिए—

लहि पिय-रबि तें हित-किरन बिकसित रह्यौ अमंद ;
आइ बीच अनरस-अवनि किय मलीन मुख-चंद।
हौं सखि, सीसी आतसी, कहति साँच-ही-साँच ;
बिरह-आँच खाई इती, तऊ न आई आँच!
तचत बिरह-रबि उर-उदधि, उठत सघन दुख-मेह,
नयन-गगन उमड़त घुमड़ि, बरसत सलिल अछेह।
नैन-आतसी काँच परि छबि-रबि-कर अवदात—
झुलसायौ उर-कागदहिं, उड़यौ साँस-सँग जात।
साजन सावन-सूर-सम और कछू देखैं न ;
तुव दृग-दुति-कर-निकर किय अंधबिंदुमय नैन।
एती गरमी देखिकै करि बरसा-अनुमान—
अली भली पिय पैं चली लली-दसा धरि ध्यान।
हृदय-सून तें असत-तम हरौ, करौ जो सून,
सून-भरन-हित तो झपटि झट आवेगौ सून।
हीय-दीय-हित-जोति लै कन-कन-बासी स्याम!
दृग-दरपन बिंबित करहु बिमल बदन बसु जाम।

भावोत्कृष्टता के विषय में पचासों दोहे हैं। यहाँ केवल कुछ दोहे स्थाली-पुलाक-न्याय से परिचय प्राप्त कराने के हेतु देता हूँ—

खरी दूबरी तिय करी बिरह निठुर, बरजोर,
चितवन चढ़ति पहार जनु जब चितवत मम ओर।
धाय धरति नहिं अंग जो मुरछा-अली अयान,
उमगि प्रान-पति-संग तो करतो प्रान पयान।
निठुर, नीच, नादान बिरह न छाँड़त संग छिन ;
सहृदय सजनि सुजान मीच, याहि लै जाहु किन?

साम्यवाद के विषय में निम्न-लिखित दोहा पढ़कर कवि के व्यापक ज्ञान के साथ-साथ उसकी हार्दिक अनुभूति का भी पता चलता है। देखिए तो, समय की प्रगति की कैसी सुंदर, उदार छटा निम्न-लिखित दोहा-रत्न में झलक रही है—

काम, दाम, आराम को सुघर समनुवै होइ,
तौ सुरपुर की कलपना कबहूँ करै न कोइ।

विश्व-प्रेम पर भी आपके दोहे दर्शनीय हैं—

जाति - पाँति की भीति तौ प्रीति - भवन में नाहिं,
एक एकता - छतहिं की छाँह मिलति सब काहिं।
ईसाई, हिंदू, जवन, ईसा, राम, रहीम,
बैबिल, बेद, कुरान में जगमग एक असीम।
एक जोति जग जगमगै जीव - जीव के जीय;
बिजुरी बिजुरीघर - निकसि ज्यों जारति पुर - दीय।

इस तरह आप देखेंगे कि ब्रजभाषा के इस कवि ने नवीन और प्राचीन, सभी विषयों पर सफलता-पूर्वक क़लम चलाई है।

दोहावली का संक्षिप्त परिमाण

उपर्युक्त उद्धरणों से यह भली भाँति स्पष्ट हो जाता है कि काव्य का यह छोटा-सा, परंतु बहुमूल्य कोष अत्यंत गंभीर और श्रेष्ठ वर्णनों का आगार है। इसकी रचना करके श्रीदुलारेलालजी अमर हो गए हैं। जो सज्जन इसके परिमाण की लघुता की ओर देखकर इसे श्रेष्ठ आसन देने में आनाकानी करें, उन्हें साहित्य-संसार के इस तथ्य का स्मरण रखना चाहिए कि किसी रचना का आदर परिमाण से नहीं, किंतु काव्योत्कर्ष की दृष्टि से होता है। संस्कृत-साहित्य के विशाल भांडार में एक सौ मुक्तक-रत्नों के कोष अमरुक-शतक का आदर उसकी रचना के काल से आज तक होता आया है। बड़े-बड़े काव्य-मर्मज्ञ, समर्थ समालोचक और साहित्य-गुरु-गंभीर रीति-ग्रंथों

के प्रणेता उसे अत्यंत आदर देते आए हैं। अमरुक-शतक सहस्रों काव्य-प्रबंधों में सर्वोत्कृष्ट माना गया है। इसकी अपूर्वता पर मुग्ध होकर साहित्य-शास्त्र-निष्णात परीक्षकों ने यह घोषणा की है—

अमरुककवेरेकः श्लोकः प्रबन्धशतायते।

ध्वन्यालोक-जैसे श्रेष्ठ रीति-ग्रंथ-रत्न के रचयिता उद्भट साहित्याचार्य श्रीआनंदवर्द्धन ने ध्वन्यालोक में मुक्तकों पर विचार करते हुए अमरुक-शतक के विषय में लिखा है—

मुक्तकेषु हि प्रबन्धेष्विव रसबन्धाभिनिवेशिनः कवयो दृश्यन्ते। यथा ह्यमरुकस्य कवेर्मुक्तकाः श्रृंगारस्यन्दिनः प्रबन्धायमानाः प्रसिद्धा एव।

अर्थात्, "एक संपूर्ण ग्रंथ (प्रबंध) में कवियों को रस-स्थापना का जो पूर्ण प्रबंध करना पड़ता है, वही एक मुक्तक में भी, जिस प्रकार अमरुक कवि के 'मुक्तक' शृंगार-रस का प्रवाह बहाने के कारण ग्रंथों (प्रबंधों) की समता प्राप्त करने में प्रसिद्ध हैं।"

जब केवल १०० मुक्तकों के कोष अमरुक-शतक को श्रेष्ठता और काव्योत्कर्षता के कारण इतना अधिक सम्मान प्रदान किया जा सकता है, तब कोई कारण नहीं कि दो सौ दोहों की दुलारे-दोहावली को, उत्कृष्ट रचना के कारण, समुचित सम्मान प्रदान न किया जाय। हम जानते हैं, संसार में ऐसे सज्जनों की संख्या बहुत ही थोड़ी है, जो दूसरों की उत्तम रचना को यथोचित आदर देने की उदारता से संपन्न होते हैं। हिंदी-साहित्य-सूर्य गोस्वामी तुलसीदासजी ने तो स्पष्ट ही कहा है—

ते नरवर थोरे जग माहीं,
जे पर-भनित सुनत हरषाहीं।

फिर यह समय तो छिद्रान्वेषण-प्रधान कहा जा सकता है। इसमें किसी कवि को न्यायोचित सम्मान की आशा करना एक प्रकार से

दुराशा है । कविराज महाराजा भर्तृहरि ने अपने वैराग्य-शतक में ठीक ही कहा है—

> बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिताः ;
>
> अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमङ्गे सुभाषितम् । (श्लोक २)

अर्थात्, "जो विद्वान् हैं, वे मत्सर-ग्रस्त हैं ; जो धनवान् हैं, वे गर्व से दूषित हृदयवाले हैं ; इनके सिवा जो और लोग हैं, वे अज्ञानी हैं, इसीलिये सुभाषित (सूक्ति-प्रधान उत्तम काव्य) शरीर में ही जीर्ण-शीर्ण हो जाता है ।"

भावापहरण

यहाँ प्रसंग-वश भावापहरण पर भी विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है, क्योंकि दुलारे-दोहावली के कुछ दोहे प्राचीन कवीश्वरों के भावों की छाया पर बनाए गए हैं । स्मरण रहे, अपने पूर्ववर्ती मनुष्यों के प्राप्त किए हुए ज्ञान से परवर्ती लोग लाभ उठाते आए हैं । यह संसार के आदि काल से होता आया है, और अंत तक होता जायगा । इसकी गति अबाध है । किसी भी क्षेत्र में यही सिद्धांत सर्वत्र दृष्टिगोचर होगा । संसार के प्रायः संपूर्ण धर्म और धर्माचार्यों के विषय में भी यही नियम लागू है । किसी एक धर्माचार्य ने सत्य के जिस सिद्धांत को खोज निकाला था, उसी का प्रतिपादन संपूर्ण धर्माचार्य करते आए हैं । अवश्य भाष्य में परिवर्तन हुए हैं, और यही बादवाले आचार्यों की मौलिकता कही जाती है ।

कवि के संबंध में भी यही नियम लागू है । पूर्ववर्ती कवियों के भावों से परवर्ती कवि सदैव लाभ उठाते आए हैं । पर प्रथम श्रेणी के कलाकार कवि वे हैं, जो उस पूर्व-प्रसिद्ध भाव में कुछ नूतनता लाए हैं । ऐसे लोग भावापहरण के दोषी नहीं ठहराए जाते, क्योंकि जिस मैदान में पूर्ववर्ती ने अत्यंत प्रसिद्धि प्राप्त की हो, उसमें ख़म ठोककर उतरना और ऐसा बल—ऐसा कौशल—दिखलाना, जैसा

वह परम प्रसिद्ध व्यक्ति भी न दिखला सका हो, सचमुच बड़ा ही प्रशंसनीय और अभिनंदनीय है। ध्वन्यालोककार श्रीआनंदवर्द्धनाचार्य ने भावापहरण पर विचार करते हुए लिखा है—

यदपि तदपि रम्यं यत्र लोकस्य किञ्चित्
स्फुरितमिति मदीयं बुद्धिरभ्युज्जिहीते ;
अनुगतमपि पूर्वच्छायया वस्तु तादृक्
सुकविरुपनिबध्नन् निन्द्यतां नोपयाति।
(ध्वन्या० ४। १६)

अर्थात्, "जिस कविता में सहृदय भावुक को कुछ नूतन चमत्कार सूझ पड़े, उसमें यदि पूर्ववर्ती कवि की छाया भी झलकती हो, तो उससे कोई हानि नहीं। इस प्रकार के काव्य का रचयिता कवि अपनी बंधच्छाया से पुराने भाव को नवीन स्वरूप देने के कारण निंदा का पात्र नहीं समझा जा सकता।"

यही पुनः लिख गए हैं—

दृष्टपूर्वा अपि ह्यर्थाः काव्ये रसपरिग्रहात् ;
सर्वे नवा इवाभान्ति मधुमास इव द्रुमाः।

अर्थात्, "पेड़ वही पुराने होते है, पर वसंत अपने रस-संचार से उन्हें नवीन रूप प्रदान करके नया बना देता है। इसी प्रकार सुकवि अपनी प्रतिभा से पुराने काव्यार्थ में नवीन रस का संचार कर उन्हें विकासक वसंत के समान शोभामय और रमणीय बना देता है।"

इसी कारण संसार की संपूर्ण भाषाओं के महाकवियों की रचनाओं में पूर्ववर्ती कवियों की छाया पाई जाती है। कवि-कुल-कलाधर कालिदास, शेक्सपियर, तुलसीदास, सूरदास, बिहारी, ग़ालिब और रवींद्रनाथ आदि संपूर्ण कवीश्वरों की रचना में पूर्ववर्ती कवियों के भावों की छाया प्रचुर मात्रा में प्राप्त होती है। कविवर दुलारेलाल की दुलारे-दोहावली भी इस नियम का अपवाद नहीं। उनके भी कुछ

दोहे पूर्ववर्ती कवियों की रचनाओं के आधार पर लिखे गए हैं। पर यह बात अवश्य है कि ऐसे स्थलों में दुलारेलाल अपनी प्रतिभा के बल से नूतन चमत्कार उत्पन्न करके पूर्ववर्ती कवीश्वरों को बहुत पीछे छोड़ गए हैं, और इसी कारण वह अर्थापहरण या भावापहरण के दोषी नहीं ठहराए जा सकते। यह बात मैंने दुलारे-दोहावली की 'पीयूषवर्षिणी' व्याख्या में भली भाँति सिद्ध की है।

हाँ, एक बात यहाँ और कथनीय है। वह यह कि काव्य का आनंद सहृदय ही ले सकते हैं। जो सहृदय नहीं है, उनका किसी कविता को अच्छा या बुरा कहना उनकी धृष्टता-मात्र है। एक संस्कृत-कवि ने इसके विषय में यथार्थ ही लिखा है—

यत्सारस्वतवैभवं गुरुकृपापीयूषपाकोद्भवं
तल्लभ्यं कविनैव नैव हठतः पाठप्रतिष्ठाजुषाम् ;
कासारे दिवसं वसन्नपि पयः पूरं परं पंकिलं
कुर्वाणः कमलाकरस्य लभते किं सौरभं सैरिभः ?

अर्थात्, "गुरु-कृपा-रूप पीयूष-पाक से उत्पन्न वाणी (सरस्वती) के वैभव को कविजन ही प्राप्त कर सकते हैं, न कि वे प्रतिष्ठा-लोलुप, जो कविता का पाठ करके हठ-पूर्वक सम्मान चाहते हैं। सरोवर में सारे दिन पड़ा रहनेवाला और समग्र जल को कीचड़मय कर डालनेवाला भैंसा क्या कभी कमलों की सुंदर सुगंध प्राप्त कर सकता है ?"

व्यंग्य-प्रधान रचना का गूढ़त्व और टीका

अब इतना निवेदन और करना है कि दुलारे-दोहावली की रचना प्रधानतया व्यंग्य-प्रधान उत्तम काव्य में हुई है, अतएव इसका पूरा आनंद मर्मज्ञ विद्वान् ही ले सकते हैं। व्यंग्य-प्रधान काव्य को भली भाँति हृदयंगम करने की जिनमें क्षमता नहीं, जो सहृदय काव्य-मर्मज्ञ नहीं, उन्हें इसका समझना कठिन होगा। इसी से ऐसे

उच्च कोटि के साहित्य-ग्रंथ का सटीक होना आवश्यक है। मैंने इस पर टीका और विस्तृत व्याख्या लिखी है, जो प्रकाशित होगी।

दोष-दर्शकों के प्रति

कुछ दोष-दर्शक सज्जन कदाचित् यह कहेंगे कि मैंने दोहावली का अब तक गुण-गान ही किया है, उसके दोषों की ओर थोड़ा भी ध्यान नहीं दिया। इसके विषय में मेरा अपना मत तो यह है कि दुलारे-दोहावली का महत्त्व गुण-बाहुल्य से है, न कि दोष-शून्यता से। फिर दोष-दर्शी आलोचकों के मत से तो संसार में दोष-शून्य काव्य की रचना ही असंभव-सी है। वे तो कहते हैं—

ऐसो कबित न जगत में, जामें दूषन नाहिं।

अंतिम निवेदन

मैं अंतिम निवेदन में इतना तो अवश्य ही कहूँगा कि ब्रजभाषा में वैज्ञानिक साहित्य-शास्त्र के निर्दिष्ट किए हुए उत्कृष्ट कलात्मक ढंग से ऐसा कुछ लिख लेना, जो सदियों से संसार में अभूतपूर्व सम्मान प्राप्त किए हुए महान् कवीश्वरों की वाणी के समक्ष ठहर सके, सचमुच बड़ी ही औवट और प्रखर प्रतिभा का काम है, एवं सबल कल्पना-पेक्षित है। इस रचना का स्थान-निर्णय करना भविष्य के हाथों में है, पर इतना तो निश्चित है कि श्रीदुलारेलालजी की यह कृति ब्रजभाषा-साहित्य की अमर रचना है। मेरी कामना तो यह है कि दुलारेलालजी ब्रजभाषा के भांडार को शीघ्र ही कोई उत्कृष्ट महा-काव्य देकर हिंदी-साहित्य की गौरव-वृद्धि करें।

आशा है, हिंदी-संसार अपने इस श्रेष्ठ कलाकार का समुचित समादर करेगा।

सागर (मध्यप्रदेश) } विनीत
२८। ७। ३४ } लोकनाथ द्विवेदी सिलाकारी

विनीत वक्तव्य

[ओरछा में, वीर-वसंतोत्सव के व.क्त, दुलारे-दोहावली पर देव-पुरस्कार प्राप्त कर लेने के पश्चात्, पुरस्कार-प्रदाता को, दोहावलीकार द्वारा दिया गया धन्यवाद]

भारतीय भूपालों में सर्वश्रेष्ठ, सहृदय हिंदी-हितैषी, काव्य-कला के कुशल पारखी, भारतीय भाषाओं की महारानी मंजु-मधुर ब्रजबानी के परम प्रेमी, देव-पुरस्कार के प्रसिद्ध प्रदाता श्रीसवाई महेंद्र महाराजा श्रीवीरसिंह देव ओरछाधिपति की सेवा में—

धन्यवाद

मम कृति दोस-भरी खरी, निरी निरस जिय जोइ—
है उदारता रावरी, करी पुरसकृत सोइ।

× × ×

मधु मिलन

सुधा*-जनक जुग-मधु-मिलन सुमन-खिलन मधु माहिं ;
उर - उपबन में सुरस-कन सुख-सौरभ सरसाहिं।

× × ×

ब्रजबानी

बर ब्रजबानी - पदुमिनी प्राचि - ओरछा - ओर—
लखि तमहर प्रिय बीर-रबि खिली पाइ सुख-भोर।

---

* ओरछाधिपति की ७½ वर्ष की कन्या और उसी उम्र की सुधा-पत्रिका। सुधा-पत्रिका के साथ-साथ जन्म पाने के कारण महाराज ने भी अपनी कन्या - रत्न का नाम सुधा रक्खा है। यह उनके हिंदी-प्रेम का ज्वलंत उदाहरण है।

ब्रजबानी - घन-प्रगति-घन देस - गगँन - बिच छाइ—
दियौ दयालु **महेंद्रजू** जन - मन - मोर नचाइ।

× × ×

आलोचकों के प्रति

संतत मद ह्वै ते अधिक पद को मद सरसाइ,
वाहि पाइ बौंराइ, पै याहि पाइ † बौंराइ।

तो भी

जे पद - मद की छाकु छकि बोलें अटपट बैन,
सोऊ सुजन कृपा करें, भरें नेह सों नैन।

× × ×

अंतिम प्रार्थना

नेह - नेह दै जो दियौ साहित - दियौ जगाइ,
सतत भरयौई राखियौ, जगत जोति जगि जाइ।

श्रीमान् का प्रेम-पूर्वक प्रदत्त यह प्रसिद्ध पुरस्कार प्राप्त करके मैं अपने को गौरवान्वित समझता और इसके लिये श्रीमान् को सादर धन्यवाद देता हूँ। किंतु श्रीमान् को विदित ही है कि मेरा तो सर्वस्व ही सरस्वती माता पर न्यौछावर है। फिर यह सरस्वतीदेवी का प्रसाद तो ख़ास तौर पर उन्हीं को समर्पण होना चाहिए। अतएव मैं आज इस पुरस्कार को भी सहर्ष एक ऐसी शुभ साहित्यिक सेवा में लगाने को उद्यत हूँ, जिसकी आवश्यकता का अनुभव सुदीर्घ समय से सभी सहृदय साहित्यिक सज्जन—कृतविद्य कवि-कोविद कर रहे होंगे। श्रीमान् का दिया हुआ यह धन मैं श्रीमान् के ही नाम से—

पाठांतर 'सेइ'।

† पाठांतर 'लेइ'।

वसंत-पंचमी के शुभ दिन* को अमर करने के लिये—नवीन और प्राचीन काव्य-पुस्तकों के प्रकाशन में लगाना चाहता हूँ। पुस्तक-रूप में इतनी ही संपत्ति मैं अपनी ओर से भी इसमें सम्मिलित करके एक पुस्तकमाला 'देव-सुकवि-सुधा' नाम से, ४,०००) के मूलधन से, प्रकाशित करूँगा। देव-पुरस्कार की रक़म से जो माला चलाई जाय, उसमें देव-शब्द संयुक्त होना तो ठीक है ही, सुधा-शब्द भी स्पष्ट कारणों से समीचीन है। आशा है, सहृदय साहित्य-संसार को भी यह नाम बहुत सार्थक—समुचित समझ पड़ेगा। अस्तु। इस पुस्तकावली का प्रबंध एक परिषद् द्वारा होगा, जिसमें अनेक सदस्य रहेंगे। इनका निर्वाचन बाद में हो जायगा। मेरी इच्छा है, श्रीमान् सवाई महेंद्र महाराजा साहब स्वयं इसके सभापति रहें, और मैं मंत्री के रूप में सेवा करूँ। आशा है, श्रीमान् मेरी यह सांजलि समभ्यर्थना स्वीकार करके मुझे इस संपत्ति को इस शुभ कार्य में लगाने का आदेश देंगे। समिति को या मुझे अधिकार होगा कि किसी सुप्रसिद्ध साहित्यिक संस्था को यह सारी संपत्ति, जब समुचित समझूँ, समर्पित कर दूँ।

---

* वसंत-पंचमी के ही दिन मेरा जन्म हुआ, मेरी प्यारी गंगा-पुस्तकमाला और गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस का जन्म भी उसी दिन हुआ, तथा वसंत-पंचमी को ही मैं उस स्वर्गीय आत्मा से एक किया गया था, जिसके नाम से मैं गंगा-पुस्तकमाला को गूँथ रहा हूँ।

प्रार्थना

[एक]

सुमिरौ वा बिघनेस को
तेज* - सदन मुख - सोम,
जासु रदन - दुति - किरन इक
हरति बिघन - तम - तोम ।

बिघनेस=विघ्नों के मालिक गणेशजी । **तेज**=(१) प्रभा, (२) ज्ञान । **सोम**=(१) चंद्रमा, (२) आकाश । **रदन**=दाँत । **तम-तोम**=अंधकार-राशि ।

---

* पाठांतर 'जोति' ।

[दो]

बंदि बिनायक बिघन-अरि,
न छुन बिघन समुहाहिं ;
कर - इंगित के करत ही
छुईमुई ह्वै जाहिं।

समुहाहि=सामना करें। **कर**=(१) सूँड़, (२) हाथ। **इंगित करत ही**=इशारा करते ही। **छुईमुई**=लाजवंती-नाम की बेलि।

[तीन]

श्रीराधा - बाधाहरनि-
नेहअगाधा - साथ—
निहचल नैंन - निकुंज में
नचौ निरंतर नाथ!

निहचल=(१) अपलक, भावमय। (२) शांत, एकांत।

[चार]

गुंजहार गर, गुंजकर
बंसी कर हरि, लेहु ;
उर - निकुंज गुंजाय, धर-
रोर - पुंज हरि लेहु।

गुंजहार=गुंजाओं की माला। **गर**=गले में। **गुंजकर बंसी**=[बांस की बनी, पर] आनंदमयी मधुर ध्वनि करनेवाली मुरली। **धर**=धरा, जगत्। **रोर**=कोलाहल।

[पाँच]

नयनन रूप ललाम तुव,
बयनन तुव प्रिय नाम,
कानन सुर अभिराम तुव,
प्रानन तू बसु जाम।

बसु जाम=आठों पहर।

[छः]

जनम दियौ, पाल्यौ, तऊ
जन बिसरायौ नाथ!
परयौ पुहुप मसल्यौ मनौं
मधु ही के मृदु हाथ।

जन=सेवक। पुहुप=फूल। मसल्यौ=मसला हुआ, मीड़ा हुआ। मधु=वसंत। मृदु हाथ-मुलायम हाथ से।

[सात]

मम तन तव रज-राज,
तव तन मम रज-रज रमत;
करि बिधि-हरि-हर-काज
सतत सृजहु, पालहु, हरहु।

रज =(१) धूल, (२) रजोगुण, (३) ज्योति, प्रकाश। रमत=(१) अनुरक्त हो रहा है, (२) लीन हो जाता है, व्याप्त हो जाता है, गायब हो जाता है। बिधि=ब्रह्मा। हरि=विष्णु। हर=महेश। सतत=सर्वदा।

[आठ]

नीरस हिय - तमकूप भ्रम ;
दोष - तिमिर बिनसाय—
रस - प्रकास भारति, भरौ,
प्यासौ मन छकि जाय।

तमकूप=अंधा कुआँ । **दोष**=काव्य-दोष । **तिमिर**=अंधकार । **रस**=(१) नवरस, (२) जल । **प्रकास**=(१) रोशनी, (२) ज्ञान । **भारति**=भारती, सरस्वती ।

प्रथम शतक

[१]

जोबन - बन - सुख - लीन
मन - मृग दृग - सर बेधि जनु—
धन - ब्याधिनि परबीन
बाँधति अलकन - पास में।

धन=युवती, वधू। पास=जाल।

[२]

कोप - कोकनद - अवलि अलि,
उर - सर लई लगाइ;
पै दिखाइ मुख - चंद पिय
दई ! दई कुम्हिलाइ।

यहाँ कोप से प्रणय-कोप का तात्पर्य है, जो मान-लीला-वश होता है; जैसे—"प्रणय-कोप मालावलि तोरी" (हरिवंश)।

[३]

द्रवि - द्रवि, दै-दै धीर नित
दियौ जु दुरदिन साथ,
आँस सुमन सो नाथ दै
पहिलें करौ सनाथ।

द्रवि-द्रवि=पिघल-पिघलकर, दया-द्रवित होकर । **धीर**=धैर्य, धीरज । **दुरदिन**=बुरे दिनो में, विरह में । जिन दिनों असमय में, ऋतु के विना, बादल छाए हों, और पानी बरसता हो, उन्हें भी दुर्दिन कहते हैं । **आँस**=आँसू । **सुमन**=(१) फूल, (२) सुंदर मन से, सुख-पूर्वक । **सनाथ** =(१ नाथ-सहित, (२) कृतकृत्य ।

[४]

कठिन बिरह ऐसी करी,
आवति जबै नगीच—
फिरि - फिरि जाति दसा लखे
कर दृग* मीचति मीच।

फिरि-फिरि जाति-बार-बार लौट-लौट जाती है । **मीच**=मृत्यु ।
* पाठांतर 'चख' ।

[५]

झपकि रही, धीरैं चलौ ;
करौ दूरि तें प्यार ;
पीर - दब्यौ दरकै न उर
चुंबन ही के भार।

पीर=पीड़ा ।

[६]

मति - सजनो बरजी किती,
फिरति फिराए नाहिं ;
नजर - नारि नाचति निलज
आँग - आँगनहिं माहिं।

मति-सजनी=मति-रूपिणी सखी । **बरजी**=रोकी । **नजर**=दृष्टि ।
आँग-आँगनहिं माहिं=अंग-रूपी आँगन में ।

[७]

किमि लहि सलिल - बिछोह हू
चढ़ै मोरचा - मान ?
ऐंचत चुंबन - चुंबकहि
नित चित - लोह सुजान।

[८]

जनु आवत लखि तन - सदन
जोबन - कंत प्रबीन—
स्वागत सिसुता - धन करति
लै कुच - कुंभ नवीन।

कंत=पति । **सिसुता**=बचपन । **धन**=नववधू ।

[९]

दमकति दरपन - दरप दरि
दीपसिखा - दुति देह;
वह दृढ़ इक दिसि दिपत, यह
मृदु दस दिसनि, स - नेह।

दरपन-दरप दरि=दर्पण का दर्प दलन करके। **दीपसिखा-दुति**=दीप-शिखा की प्रभावाली। **स-नेह** = (१) तेल-युक्त, चिकनी, (२) प्रेम-युक्त, प्रेम-भरी, मजीव।

[१०]

नाह - नेह - नभ ते सजनि,
टारि रोस को राहु—
पिय - मुख - चंद दिखाहु प्रिय,
तिय - कुमुदिनि बिकसाहु।

नाह-नेह-नभ तें=प्रेम-पात्र के प्रेम-रूपी आकाश से। **रोस**=रिस, क्रोध। **बिकसाहु**=प्रफुल्लित करो।

[११]

कवि - सुरबैद्यन - बीर - रस
साहित - सर सरसाय;
न्हाय जठर भारत - च्यवन
तुरत ज्वान ह्वै जाय।

कबि-सुरबैद्यन=कवि-रूप अश्विनीकुमार। **साहित-सर**=साहित्य का सरोवर। **जठर**=वृद्ध, जरठ। **भारत-च्यवन**=भारत-रूपी च्यवन ऋषि।

[१२]

झर - सम' दीजै देस - हित
झर - झर जीवन - दान ;
रुकि - रुकि यों चरसा - सरिस
दैबौ कहा सुजान ?

झर=पानी का लगातार बरसना, झड़ी या झरना । **जीवन**=(१) ज़िंदगी, प्राण, (२) जल । **चरसा**=चरस ।

नोट—इस दोहे में देश-हित में ज़िंदगी या प्राण देने का ज़ोरदार भाव है ।

[१३]

छुआछूत के भूत कों
सिर सों मीत, उतारु ;
मानवता - दुरबीन लै
लखौ सबै संसारु ।

[१४]

हिममय परबत पर परति
दिनकर - प्रभा प्रभात,
प्रकृति - परी के उर परयौ
हेम - हार लहरात ।

प्रकृति-परी = प्रकृति-रूपिणी अप्सरा । **हेम-हार** = स्वर्णमाल ।

[१५]

ऊँच - जनम जन, जे हरैं
    नित नमि - नमि पर - पीर ;
गिरिबर तें ढरि - ढरि* धरनि
    सींचत ज्यों नद - नीर।

नमि-नमि = झुक-झुककर। **धरनि** = ज़मीन पर।

* पाठांतर 'गिरि-गिरि'।

[१६]

संतत सहज सुभाव सों
    सुजन सबै मनमानि—
सुधा - सरस सींचत स्रवन
    सनी - सनेह सुबानि।

[१७]

भाव - भाप भरि, कलपना-
    कर मन - उदधि पसारि—
कबि - रबि मुख - घन तें जगहिं
    नव रस देइ सँवारि।

[१८]

इड़ा - गंग, पिंगला - जमुन,
सुखमन - सरसुति - संग—
मिलत उठति बहु अरथमय,
अनुपम सबद - तरंग।

सुखमन=सुषुम्णा। इस दोहे में इड़ा, पिंगला और सुषुम्णा के मेल का गंगा, यमुना और सरस्वती के संगम से मिलान किया गया है। सबद-तरंग=तरंगों से उठा हुआ शब्द और अनहद-नाद।

[१९]

काँटनि - कँकरिनि बरूनि चुनि,
अँसुवनि - कनि मग सींचि,
कसक - कराहनि हौं रह्यो
आहनि ही तोहिं ईंचि।

[२०]

कब तें, मन - भाजन लएँ,
खरौ तिहारे द्वार!
दरसन - दुति - कन दै हरौ
मति - तम - तोम अपार।

कन=(१) कण, (२) भिक्षा।

[२१]

देह - देस लाग्यौ चढ़न
इत जोबन - नरनाह,
पगन - चपलई उत लई
जनु दृग - दुरग - पनाह।

देह-देस=शरीर रूपी देश पर। **पगन-चपलई**=पैरों की चंचलता ने
दुरग=दुर्ग, क़िला। **पनाह**=शरण।

[२२]

तचत बिरह - रबि उर - उदधि,
उठत सघन दुख - मेह,
नयन - गगन उमड़त घुमड़ि,
बरसत सलिल अछेह।

अछेह=(१) जिसमें छेह अर्थात् छोर और अंतर न हो, निरंतर
(२) अत्यंत, ज़्यादा।

[२३]

नेह - नीर भरि-भरि नयन
उर पर ढरि - ढरि जात;
टूटि - टूटि तारक गगन
गिरि पर गिरि - गिरि जात।

तारक=तारे, नक्षत्र।

[२४]

नई सिकौरिन - नारि,
चितवन - बंसी फेंकिकें,
चट घूँघट - पट डारि,
चंचल चित - झख लै चली।

बंसी=मछली फँसाने का काँटा। **घूँघट-पट**=घूँघट-पट-रूपी वस्त्र। यहाँ 'पट' श्लिष्ट है। **चित-झख**=चित्त-रूपी मत्स्य।

[२५]

चीतत चिती जु चीत-पट
चल चख - कूँची फेरि,
चटक मिटाए हू बढ़ति,
कढ़ति न चतुर चितेरि।

चीतत चिती=चित्र बनाती हुई चित्रित हो गई। **चीत**=(१) चित्त, (२) चित्र।

[२६]

चित - चकमक पै चोट दै,
चितवन - लोह चलाइ—
लगन-लाइ हिय - सूत में
ललनां गई लगाइ।

लाइ=अग्नि।

[२७]

करत रहत संतत नयन
मोतियन को ब्यौपार;
फिरि-फिरि तुव सुधि आइ इत
लेति इन्हैं दै प्यार।

[२८]

मृदु हँसि, पुनि-पुनि बोलि प्रिय,
कै रूखो रुख बाम—
नेह उपै, पालै, हरै,
लै बिधि - हरि - हर - काम।

रूखो रुख=उपेक्षा का भाव। **उपै**=उत्पन्न करती है।

[२९]

पुर तें पलटे पीय की
पर - तिय - प्रीतिहिं पेखि—
बिछुरन-दुख सों मिलन-सुख
दाहक भयौ बिसेखि।

पुर तें पलटे=नगर से लौटे हुए। **पेखि**=देखकर। **दाहक**=जलाने-वाला। **बिसेखि**=विशेष करके।

[३०]

कढ़ि सर तें द्रुत दै गई
　　दृगनि देह - दुति चौंध ;
बरसत बादर - बीच जनु
　　गई बीजुरी कौंध ।

द्रुत=शीघ्र ।

[३१]

लखिकें भारत - दीप कों
　　हतप्रभ - सो, असहाइ—
दै नवजीवन - नेह निज
　　गंधी दियौ जगाइ ।

नवजीवन=(१) नवीन स्फूर्ति, (२) महात्मा गांधी का नवजीवन-नामक पत्र । नेह = (१) प्रेम, (२) तेल । गंधी=(१) गांधीजी, (२) अत्तार ।

[३२]

बीर धीर सहि तीर - झर
　　कटक काटि कढ़ि* जात ;
बादल - दल बरसत बिकट,
　　बायुयान बढ़ि जात ।

* पाठांतर 'चमू चीरि चढ़ि' ।

[३३]

रही अछूतोद्धार - नद
छुआछूत - तिय डूबि;
साखन कौ तिनकौ गहति
क्रांति - भँवर सों ऊबि।

[३४]

नखत - मुकत आँगन - गगन
प्रकृति देति बिखराय,
बाल हंस चुपचाप चट
चमक - चोंच चुगि जाय।

नखत-मुकत = नक्षत्र-रूपी मोती । **बाल हंस** = (१) प्रातःकाल का सूर्य, (२) हंस का बच्चा ।

[३५]

सबै सुखन को सोत,
सतत निरोग सरीर है;
जगत - जलधि को पोत,
परमारथ - पथ - रथ यहै।

सोत=स्रोत, चश्मा । **जलधि** = समुद्र । **पोत** = जहाज़ ।

[३६]

कला वहै, जो आन पै
आपुनि छाँड़ै छाप :
ज्यों गंधी के गेह में
गंध मिलति है आप।

आन पै = दूसरे पर। **आपुनि** = अपनी।

[३७]

जाति - पाँति की भीति तो
प्रीति - भवन में नाहिं,
एक एकता - छतहिं की
छाँह मिलति सब काहिं।

भीति– भित्ति, दीवार।

[३८]

पुसकर - रज तें मन-मुकुर
पावत इतौ उजास,
होंन लगत बिंबित तुरत
सुचि, अनंत परकास।

पुसकर = पुष्कर-तीर्थ, जो अजमेर के पास है। यहा ब्रह्मा ने तप किया था। इसका माहात्म्य पद्म-पुराण और नारद पुराण में गाया गया है।

[३९]

जगत - जलधि में तन - तरी
परी अरी, मँझधार ;
मन - मलाह जो बस करै,
निहचै उतरै पार ।

निहचै= निश्चय-पूर्वक ।

[४०]

माया - नींद भुलाइकैं,
जीवन - सपन - सिहाइ,
आतम - बोध बिहाइ तैं
मैं - तैं ही बरराइ !

सिहाइ=मुग्ध होकर । **बिहाइ**=त्यागकर ।

[४१]

मनौ कहे - से देत,
नयन - चवाई चपल हैं—
तिय - तन - बन - संकेत,
लरिकाई - जोबन मिले ।

चवाई = निंदक । **तिय-तन-बन-संकेत** = नारी-शरीर-रूपी वन के संकेत-स्थल में । **लरिकाई-जोबन** = बाल्यावस्था और यौवन । इस दोहे में कवि ने बाल्यावस्था और यौवन को नायिका और नायक कथन कर उनका नारी-तन-रूप वन के संकेत-स्थल में मिलन कराया है, जिसकी चुगली खानेवाले चपल नेत्र हैं ।

[४२]

तन - उपबन सहिहै कहा
बिछुरन - झंझाबात,
उड़्यौ जात उर - तरु जबै
चलिबे ही की बात ?

तन-उपबन = शरीर-रूपी बाग। **बात** = श्लिष्ट पद है। इससे बात (चर्चा)-रूपी वायु का तात्पर्य है।

[४३]

मुकता मुख - अँसुआ भए,
भयौ ताग उर - प्यार ;
बरुनि - सुई तें गूँथि दृग
देत हार उपहार।

ताग=धागा।

[४४]

बीय दीय ज्यों - ज्यों बरै,
त्यों - त्यों घटै सनेह ;
हीय - दीय ज्यों - ज्यों जरै,
त्यों - त्यों बढ़ै सनेह।

बीय = दूसरा। **दीय** = दिया। **सनेह** = (१) घृत, (२) प्रेम।

[४५]

कैसे बचिहै लाज - तरु ?
रहौ निगोड़े नैंन !
चवा भई चहुँ दिसि चलति
चारि चवाइन - सैन।

निगोड़े = (१) पग-विहीन, (२) एक प्रकार की गाली । **चवा**= चारो ओर से चलनेवाली हवा ।

[४६]

कहा भयौ पिय कों, कहत—
मो मुख मुकुर - उदोत ?
यह तो मुख - छबि - कर लहत
आप सुदीपित होत !

[४७]

राखत दंपति - दीप को
दीपित साँच सनेह ;
रहति आतमा - जोति ते
जगमग जैसे देह ।

[४८]

लंक लचाइ, नचाइ दृग,
पग उँचाइ, भरि चाइ,
सिर धरि गागरि, मगन, मग
नागरि नाचति जाइ।

भरि चाइ = उमंग में भरकर।

[४९]

गंगा - जमुना - सरसुती,
बचपन - जोबन - रूप—
तिय - त्रिबेनि नहिं देति केहिं
मति - महि मुकति अनूप ?

मति-महि = मति-रूपी पृथ्वी से।

[५०]

बही जु आवन - बात में,
मूँदि लिए दृग लाल;
नेह - गही उलही, रही
मही - गड़ी - सी बाल।

आवन-बात=आने की बात-रूपी वायु में।

[५१]

भारत - कुंजर मत्त है
बढ़्यौ मुकति की ओर;
बाँधन चाहत आप पै
नवसासन की डोर।

कुंजर = हाथी।

[५२]

दुष्ट - दनुज - दल-दलन कों
धरे तीक्ष्ण तरवार—
देश - शक्ति दुर्गावती
दुर्गा को अवतार।

दुर्गावती=गढ़ामंडला की वीर नारी दुर्गावती, जिसने अकबर बादशाह के कड़ामानकपुर के सूबेदार आसफखाँ से लोमहर्षण संग्राम किया था।

[५३]

हरिजन ते चाहौ भजन,
तौ हरि - भजन फजूल,
जन द्वारा ही होत नित
राजन - मिलन कबूल।

चाहौ भजन=भागना चाहो।